

# अपभ्रंश भारती

जनवरी, 1990

ख्वयंभू विशेषांक

1



अपभ्रंश साहित्य अकादमी  
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी  
राजस्थान

# अपभ्रंश भारती

षट्द्वार्षिक  
शोध-पत्रिका

जनवरी, 1990

सम्पादक

श्री ज्ञानचन्द्र खिन्दूका

डॉ. कमलचन्द सोगानी

डॉ. छोटेलाल शर्मा

प्रकाशक

अपभ्रंश साहित्य अकादमी  
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी

मुद्रक  
जर्नल प्रेस  
जयपुर-302 001

वार्षिक मूल्य  
चालीस रुपये मात्र



# विषय-सूची

क्र. सं.	विषय	लेखक	पृ. सं.
	सम्पादकीय		
	प्रकाशकीय		
1.	अपभ्रंश के आदि कवि स्वयंभू	डॉ. त्रिलोकीनाथ प्रेमी	1
2.	जगत में जीव अकेला	महाकवि स्वयंभू	8
3.	महाकवि स्वयंभूदेव की भाषा में प्रयुक्त स्वर-ध्वनियों का विवेचन	डॉ. कैलाशनाथ टण्डन	9
4.	जरा न जरी	महाकवि स्वयंभू	20
5.	कारक-विधान	डॉ. रामबरन पाठक	21
6.	'पउमचरिउ' पर आधारित संधि-विधान	सुधी प्रीति जैन	27
7.	स्वयंभू और पक्ष-विचार	डॉ. छोटेलाल शर्मा	33
8.	एउ ण जाणहो एककु पर	महाकवि स्वयंभू	50
9.	पउमचरिउ का एक प्रसंग व्याकरणिक विश्लेषण	डॉ. कमलचन्द सोगारणी	51
10.	स्वयंभू-भाषा-शब्द-सम्पदा	प्रो. कैलाशचन्द्र भाटिया	61
11.	सीलु जे मण्डणउ	महाकवि स्वयंभू	64
12.	पउमचरिउ के काव्यचित्र	डॉ. सुषमा शर्मा	65
13.	पउमचरिउ में विब	डॉ. जे. एस. कुसुमगीता	76
14.	विश्वास करो	महाकवि स्वयंभू	92
15.	अपभ्रंश रचना सौरभ	डॉ. कमलचन्द सोगारणी	93
16.	सहयोगी लेखक		114



## सम्पादकीय

‘अपभ्रंश साहित्य अकादमी’ की स्थापना अपभ्रंश भाषा और साहित्य के स्वतन्त्र अध्ययन-अध्यापन के विशेष उद्देश्य को लेकर हुई है। अपभ्रंश भाषा एक सशक्त जनभाषा रही है जिसे ‘देशीभाषा’ के नाम से जाना जाता था। कालान्तर में इसे ‘अवहट्ट, अपभ्रंश’ आदि नाम दिये गये। धीरे-धीरे इस जनभाषा में साहित्यका निर्माण भी होने लगा। अपभ्रंश भाषा में साहित्य की सभी विधाओं में रचनाएं की जाने लगी। समूचे राष्ट्र में इस ‘जनबोली’ में साहित्य रचा गया। कश्मीर के शैवग्रंथ अपभ्रंश में हैं। कामरूप, बिहार, उड़ीसा के सिद्धों की बानियों की भाषा अपभ्रंश है। गोरखनाथ के वचन इसी भाषा में हैं। आंध्र में पुष्पदन्त ने, कर्नाटक में स्वयंभू ने और उत्तर प्रदेश में कनकामर ने जैन चरितों की रचना अपभ्रंश में ही की है। विद्यापति वैष्णव-गीत इसी में गाते हैं और ऐतिहासिक आख्यान की योजना अपभ्रंश में ही करते हैं। गुजरात और राजस्थान के सूरियों ने इसका प्रयोग अनेक विधाओं में किया है। राजस्थान के जोइन्दु और रामसिंह आध्यात्मिक रहस्यवाद का उद्बोधन इसी भाषा में करते हैं। मुल्तान के अब्दुल रहमान ने लोकगीतों को इसी के स्वरों में बांधा है और चन्दबरदायी की भोजभरी गर्जना इसी में सुनाई पड़ती है। ‘वीसलदेव रासो’ और ‘ढोला मारू रा दूहा’ इसके अवहट्ट रूप की ही रचनाएं हैं। संत ज्ञानेश्वर ने भी ‘ज्ञानेश्वरी’ में यथास्थान इसका सहारा लिया है। विद्याधर और मुंज का प्रेम इसी (भाषा) में इतना भावुक हो सका है। रङ्ग तो कल तक इसी भाषा में लिखते हैं। कहने का तात्पर्य है कि ज्ञात और अज्ञात अनेक कविलेखकों ने अपभ्रंश साहित्य के कलेवर की वृद्धि की है। इस प्रकार यह देश की साहित्यिक भाषा ही नहीं राष्ट्रभाषा भी बन गई। लोकजीवन की ऐसी कोई विधा नहीं बची जिस पर अपभ्रंश भाषा में न लिखा गया हो। इसमें राष्ट्रभाषा को अधिकाधिक पुष्ट, बलिष्ट करने की हर प्रकार की संभावना है। इतना विशाल और महत्वपूर्ण साहित्य होते हुए भी प्रारम्भ में यह उपेक्षित ही रहा। सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के समान आधार अपभ्रंश में सुरक्षित हैं किन्तु उपेक्षा के कारण इसका महत्व उजागर नहीं हुआ जिससे देश में भाषायी विवाद खड़े हो गये। उसका भाषायी एकीकरण डगमगा गया। बोलियों की पारिभाषिक

(ii)

अपभ्रंश भारती

शब्दावली ओझल हो गई। इतिहास और परम्परा की शृंखला टूट गई। इस तरह अपभ्रंश भाषा और साहित्य को भुलाकर हमने अपनी पहचान ही नहीं खो दी वरन् राष्ट्रीय एकता को भी किनारे कर दिया। सिद्धों और नाथों की शब्दावली समझ से परे हो गई। कबीर, सूर, तुलसी और जायसी की रचनाओं में अपभ्रंश शब्द-शब्दरूपों, क्रिया-क्रियारूपों की बहुलता है, अपभ्रंश की इन शब्दावलियों से पूर्ण परिचय न होने के कारण उनके (उनकी रचनाओं) के सम्यक् अर्थ न समझे जा सके।

अपभ्रंश साहित्य अकादमी का प्रयास है अपभ्रंश के अध्ययन-अध्यापन को सशक्त करके उसके सही रूप को सामने रखना जिससे आधुनिक आर्यभाषाओं के स्वभाव और उनकी संभावनाएं स्पष्ट हो सकें। शोध-पत्रिका 'अपभ्रंश-भारती' इसमें सहायक हो सकेगी।

'स्वयंभू' अपभ्रंश के पुरस्कर्ता हैं। वे अपभ्रंश के प्रथम ज्ञात कवि हैं। 'अपभ्रंश' भाषा पर ऐसा अचूक अधिकार फिर कभी किसी कवि का नहीं दिखाई दिया। अलंकृत भाषा तो बहुतों ने लिखी लेकिन ऐसी प्रवाहमयी और लोकप्रचलित 'अपभ्रंश' फिर नहीं लिखी गई। वे पहले बिन्दु पर भी हैं और आखिरी पर भी। उन्होंने लोकभाषा अपभ्रंश को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित किया। स्वयंभू ने लोकभाषा की संभावनाओं को साहित्यिक सौन्दर्य से इतने गहरे उतरकर जोड़ा कि उनको साहित्यशास्त्री आज तक नाम भी नहीं दे पाए। इस तरह स्वयंभू असाधारण प्रतिभा के धनी थे। 'अपभ्रंश भारती' के एकाधिक अंक महाकवि स्वयंभू के साहित्य पर ही आधारित होंगे। यह प्रथम अंक भी स्वयंभू विशेषांक के रूप में प्रस्तुत है।

पत्रिका के लेखकों एवं अन्य सभी सहयोगियों के प्रति आभारी हैं। जर्नल प्रेस भी धन्यवादाहर्ह है।

ज्ञानचन्द्र खिन्दूका

डॉ. कमलचन्द सोगाणी

डॉ. छोटेलाल शर्मा

## प्रकाशकीय

भारत विभिन्न भाषाओं का देश है। यहां बहुत प्राचीन काल से ही लोक-भाषाओं में साहित्य लिखा जाता रहा है। जीवन के विविध मूल्यों के प्रति जनता को जागृत करने के लिए लोकजीवन के विविध पक्षों, सांस्कृतिक मूल्यों को लोकभाषा में अभिव्यक्त करना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। लोकभाषा में ही जन-चेतना की हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति होती है।

‘अपभ्रंश’ भी लोकभाषा थी। ईसा की छठी शताब्दी तक आते-आते ‘अपभ्रंश’ साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए सशक्त माध्यम बन गई। 7वीं शती से 17वीं शती तक अपभ्रंश में साहित्य-रचना होती रही। अपभ्रंश एक लंबे समय तक उत्तर भारत की भाषा बनी रही। भारत के सभी बर्गों ने इसमें, साहित्य लिखा किन्तु कालान्तर में वह साहित्य लुप्तप्रायः हो गया। क्यों-कैसे ? कुछ कहा नहीं जा सकता। शायद देश की आंतरिक उथल-पुथल के कारण ऐसा हुआ हो। जो कुछ साहित्य आज सामने है वह बड़े संघर्ष का फल है। कुछ साहित्य जैन मंदिरों और भंडारों में छिपा रह गया, कुछ तिब्बत आदि के पीठों में तो कुछ जनता के कण्ठ में। उपेक्षा ने इसके संरक्षण को संकुचित कर दिया। फिर भी नींव पक्की थी इसलिए डग-मगाई जरूर लेकिन गिरी नहीं। आज इसमें ऐहिक साहित्य के अतिरिक्त वैष्णव, शैव, शाक्त, सिद्ध और जैन साहित्य पुष्कल मात्रा में मिलता है।

अपभ्रंश का साहित्य प्रकाशित न होने के कारण इसकी ठीक-ठीक रुचि पाठकों में नहीं पनप सकी। इसके समुचित ज्ञान का अभाव बना रहा इसलिए इसके अध्ययन-अध्यापन की उचित व्यवस्था न हो सकी। इससे अपभ्रंश का ही नहीं, आधुनिक भारतीय भाषाओं का भी बड़ा नुकसान हुआ। उनके साहित्य का प्रामाणिक इतिहास नहीं बन सका। उनकी भाषाओं का सही विश्लेषण नहीं हो सका। उनके अनेक काव्यरूपों के स्रोत ज्ञात नहीं हो सके।

इसका देशव्यापी परिणाम हुआ। एकीकरण की प्रक्रिया में दरार पड़ गई, देश में भाषायी विवाद उठ खड़े हुए और राष्ट्र बिखराव की चपेट में आ गया। बोलियों और



जनपदीय भाषाओं की पारिभाषिक और तकनीकी शब्दावली दबी रह गई, उनके लिए नए कोश उभर कर आए जो शिक्षा पर भार बन गये। इतिहास और परम्परा की कड़ियां ही भटक गईं, हमारी पहचान खो गई।

अपभ्रंश भाषा की संभावनाएं विशाल हैं। लोकजीवन की ऐसी कोई विधा नहीं जो यहां न हो। कवि स्वयंभू प्रथम अपभ्रंश कवि हैं जिनका साहित्य हमें उपलब्ध है, इससे पूर्व के कवियों के नामोल्लेख तो प्राप्त होते हैं परन्तु कोई कृति नहीं मिलती। इस प्रकार महाकवि स्वयंभू अपभ्रंश के 'आदिकवि' हैं। लोकभाषा अपभ्रंश को उच्चासन पर प्रतिष्ठापित करनेवाले कवि हैं स्वयंभू। अपभ्रंश का कोई भी परवर्ती कवि स्वयंभू के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सका। वे असाधारण प्रतिभा के धनी थे। पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ और स्वयंभूछन्द-कवि स्वयंभू की तीन रचनाएं हैं। पउमचरिउ का विषय रामकथा है और रिट्ठणेमिचरिउ का हरिवंश की कथा। स्वयंभूछन्द छन्दों से सम्बन्धित कृति है। इनमें प्रथम दो महाकाव्य हैं। पउमचरिउ व स्वयंभूछन्द पूर्ण प्रकाशित हैं, रिट्ठणेमिचरिउ का कुछ अंश प्रकाशनाधीन है। इन काव्यों से स्वयंभू की काव्यप्रतिभा, प्रभावशीलता, मौलिकता और जनभाषा के प्रति उनकी अगाध निष्ठा का परिचय मिलता है।

अपभ्रंश साहित्य अकादमी अपनी शोध-पत्रिका 'अपभ्रंश भारती' का प्रथम अंक स्वयंभू-साहित्य पर प्रकाशित कर उस महान् साहित्यसाधक के अवदान को जन-जन तक पहुंचाना चाहती है। यह प्रथम अंक स्वयंभू की रचना 'पउमचरिउ' पर आधारित है।

ज्ञानचन्द्र खिन्नुका

संयोजक

अपभ्रंश साहित्य अकादमी

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र महावीरजी

# अपभ्रंश साहित्य अकादमी

## प्रमुख योजनाएं

अपभ्रंश साहित्य के अध्ययन-अध्यापन एवं प्रचार-प्रसार हेतु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी की प्रबन्धकारिणी कमेटी द्वारा संचालित जैनविद्या संस्थान के अन्तर्गत 7 नवम्बर 1982 को 'अपभ्रंश साहित्य अकादमी' की स्थापना की गई।

अपभ्रंश भाषा का अध्ययन आधुनिक भारतीय भाषाओं और उनकी बोलियों के साहित्य के अध्ययन में प्रमुखरूप से सहायक है।

अपभ्रंश साहित्य अकादमी की अपनी एक योजना है, लक्ष्य है, कुछ अपेक्षाएं-आकांक्षाएं हैं और कुछ उपलब्धियां।

योजनाएं—परिचय-प्रसार प्रकोष्ठ, शोध और प्रायोजना प्रकोष्ठ, पांडुलिपि प्रकोष्ठ आदि के माध्यम से प्रारम्भ की जानेवाली कतिपय प्रमुख योजनाएं—

### 1. परिचय-प्रसार प्रकोष्ठ

(अ) अपभ्रंश प्रवेशिकाओं का निर्माण जिससे अपभ्रंश भाषा को सरलरूप में सीखा-सिखाया जा सके।

(आ) 1 विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के हिन्दी विभागों एवं क्षेत्रीय भाषा विभागों से सम्पर्क करना।

2 उनके पाठ्यक्रमों में अपभ्रंश को स्थान दिलाना।

3 उनका पाठ्यक्रम बनाना।

4 तदनु रूप पाठ्यसामग्री का संकलन एवं उसका प्रकाशन।

(इ) विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के प्रवक्ताओं-प्राध्यापकों को अपभ्रंश भाषा, साहित्य, व्याकरण पढ़ने-पढ़ाने के लिए प्रशिक्षण देना और तदनु रूप अल्पकालीन शिविरों की व्यवस्था करना।

- (ई) अपभ्रंश साहित्य के ज्ञान से सम्बन्धित सर्टीफिकेट परीक्षा-डिप्लोमा परीक्षा समारंभ करना और उनका पाठ्यक्रम बनाना, तदनु रूप पाठ्यसामग्री का संकलन करना और उसका प्रकाशन करना ।
- (उ) पत्राचार के माध्यम से सर्टिफिकेट और डिप्लोमा के प्रशिक्षण की व्यवस्था ।
- (ऊ) सर्टीफिकेट और डिप्लोमा परीक्षाओं को यथासंभव विश्वविद्यालय अनुदान समिति तथा अन्य विश्वविद्यालयों द्वारा मान्य कराना ।
- (ए) अपभ्रंश भाषा साहित्य में स्नातक, स्नातकोत्तर एवं एम. फिल. की व्यवस्था करना । उनके अनुरूप पाठ्यसामग्री का संकलन करना और उनका प्रकाशन करना ।
- (ऐ) शोध-पत्रिका अपभ्रंश-भारती का प्रकाशन ।
2. **शोध और प्रयोजना प्रकोष्ठ**
- (अ) 1. अपभ्रंश भाषा 2. अपभ्रंश साहित्य और 3. अपभ्रंश व्याकरण सम्बन्धी अध्ययन और प्रयोजनाओं की व्यवस्था करना ।
- (आ) अल्पकालीन और दीर्घकालीन प्रयोजनाओं का शुभारंभ करना ।
- (इ) विश्वविद्यालयों से अपने निदेशक को मान्यता दिलाने का प्रयत्न करना ।
- (ई) विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में होनेवाले इस प्रकार के शोधकार्य में सहायता की व्यवस्था करना ।
3. **पांडुलिपि प्रकोष्ठ**
- (अ) अपभ्रंश भाषा की यथाप्राप्य पांडुलिपियों का संग्रह करना ।
- (आ) उनका नव वैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर पाठालोचन की व्यवस्था करना, आदि ।

### उपलब्धियां

1. अपभ्रंश साहित्य अकादमी के सर्टिफिकेट, डिप्लोमा आदि के पाठ्यक्रम प्रारंभ हो चुके हैं ।
2. विश्वविद्यालयों के अध्यापकों का एक प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न हो चुका है ।
3. विभिन्न स्थानों में प्राप्य अपभ्रंश पांडुलिपियों की फोटोस्टेट प्रतियों का संग्रह प्रारंभ किया जा चुका है ।
4. अपभ्रंश साहित्य में विश्वविद्यालय के बी.ए., एम.ए., एम. फिल. तथा अकादमी के लिए सर्टीफिकेट, डिप्लोमा और हायर डिप्लोमा के राष्ट्रीय स्तर के पाठ्यक्रम निमित्त कर लिये गये हैं जिन्हें शैक्षणिक परिषद् द्वारा अनुमोदन प्राप्त है ।
5. पाठ्यक्रम की प्रतियां विभिन्न विश्वविद्यालयों को भेजी जा चुकी हैं ।
6. पाठ्यक्रम के अनुरूप संकलन तैयार किये जा रहे हैं ।
7. प्रारंभिक व्याकरण का प्रकाशन मुद्रणाधीन है ।
8. शोध-पत्रिका 'अपभ्रंश-भारती' का प्रथम अंक प्रकाशित होकर आपके हाथों में है ।

## अपभ्रंश के आदि कवि स्वयंभू

—डॉ. त्रिलोकीनाथ 'प्रेमी'

□

भारतीय-वाङ्मय में पौराणिक काव्य-परम्परा समग्र भारतीय भाषाओं के साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण उपजीव्य रही हैं। कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से परवर्ती काव्य उसका ऋणी है। शास्त्र और आगमों की विचारधारा को जन-जीवन में उतारने तथा सहज, रुचिकर एवम् बोधगम्य बनाने के लिए पौराणिक साहित्य के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि अ-वैदिक बौद्ध और जैन-धर्मावलंबी संप्रदायों में भी ऐसे साहित्य की संरचना का स्रोत स्फुरित हुआ मिलता है। बौद्ध तथा जैनों का अपरिमित कथा-साहित्य इसका निदर्शन है। बौद्ध-सिद्धों की तो वाणी का माध्यम जन-जीवन की भाषा से इतर हो जाने के कारण अपनी पृथक् लीक बना लेता है। किन्तु जैन मुनियों और कवियों ने धर्म के प्रचारार्थ जन-भाषा को अपनाकर अपने कृतित्व को अमर बना दिया। यह जन-भाषा अपभ्रंश है जो 8 वीं से 13 वीं शताब्दी तक समूचे उत्तर भारत में साहित्यिक अभिव्यक्ति का सबल माध्यम बनी रही। संस्कृत की तुलना में अपनी सरलता, सरसता, व्याकरणिक कठोरता से से दूर, परसर्गों की प्रयोगबहुलता और वाक्य-विन्यास की सहजता के कारण इसने न जाने कितने जैन-अजैन कवियों को काव्य-रचना के लिए आकर्षित किया। बंगाल के सरहपा आदि सिद्धों ने अपने 'दोहा-कोश' के लिए इसे चुना, तो मिथिला के विद्यापति ने स्थानीय बोली का पुट देकर इसे अपने गीतों का माध्यम बनाया—'देसिल बअना सब जन मिट्ठा'<sup>1</sup>। मुल्तान के मुसलमान कवि अब्दुल रहमान के कंठ से भी 'संदेश रासक' विरह-काव्य की संरचना में

यही स्फुरित हुई और जैन मुनियों में स्वयंभू आदि ने भी इसे ही अपनाया। सचमुच आत्म-सुख और आत्म-विश्वास की अभिव्यक्ति का पुष्ट माध्यम लोक भाषा के अतिरिक्त और अन्य नहीं। कविता कवि के इसी आत्म-सुख और आत्म-विश्वास की ही सहज अभिव्यक्ति है, चाहे वह प्रबन्धपरक हो अथवा मुक्तक। उसका सहज सीधापन और सपाटपन अपनी व्यंजना और वक्रता की नैसर्गिकता में, कवि के मर्म को उजागर करने में जहाँ साधक बनता है, वहाँ शिल्पगत सौन्दर्य को भी समृद्ध करता है। कृत्रिमता और बनाबटीपन में कविता जन-जीवन से दूर होकर संप्रेषण की शक्ति की खो बैठती है। निदान, 'स्वान्तः सुखाय' के साथ 'पर-सुखाय' की प्रवृत्ति कविता की सफलता की आधार-भूमि है। अस्तु, कविता में सहजता और अभिव्यक्ति का बांकपन लोक-भाषा या जन-भाषा की प्रवृत्ति के कारण स्वतः उद्भूत हो जाते हैं। तभी तो कविता के शब्द 'आप-बोला' होते हैं। संस्कृत के आदिकवि वाल्मीकि ने इसीलिए अपनी रामायण में लौकिक-संस्कृत को ही माध्यम बनाया है और अपभ्रंश के आदिकवि स्वयंभू तो 'सामण्य गामिल्ल भास' को छोड़ना ही नहीं चाहते—

सामण्य भास छुडु सावडड । छुडु आगम-बुत्ति का वि घडड ॥

छुडु हौंति सुहासिय वयणाई । गामिल्ल-भास-परहरणाई ॥२

गोस्वामी तुलसीदासजी भी 'भाषाबद्ध करवि मैं सोई' कहकर लोक-भाषा की ही प्रतिष्ठा करते हैं। जो कविता जितने बड़े लोक-मानस को छूती और झुकभोरती है, वह उतनी ही सफल और सार्थक होती है। प्रत्यक्ष और परोक्षतः इसका प्रभाव यह भी होता है कि कविता में लोक-साहित्य की मार्मिकता का समाहार हो जाता है। पुराण-साहित्य की यही सर्वोपरि विशेषता और गरिमा है। अपनी रामायण में आदिकवि वाल्मीकि ने जिस प्रकार जन-प्रचलित लौकिक-संस्कृत को साहित्यिक कलेवर में प्रयुक्त कर उसके रूप को सजाया-संबारा है, ठीक उसी प्रकार महाकवि स्वयंभू ने भी तत्पुत्री अपभ्रंश को साहित्यिकता प्रदान कर 'पउमचरिउ' की संरचना की। स्वयंभू सचमुच अपभ्रंश के आदिकवि वाल्मीकि हैं। यों अनेक बौद्ध-सिद्धों की रचनाओं में भी काव्यत्व निखरा है किन्तु अभिव्यक्ति की दुरूहता दूषण बन गई है।

भारतीय-परम्परा के पुराण-साहित्य में राम और कृष्ण के संदर्भों ने लोक-जीवन को जितना प्रभावित किया है, उतना अन्यो ने नहीं। 'वाल्मीकि रामायण' में इसीसे दशरथ-नन्दन राम के आदर्श ऐतिहासिक चरित्र और ऐश्वर्य को कविता का प्रतिपाद्य बनाया गया है। वे युग-सत्य को नहीं झुठलाते और राम के माननीय रूप की गाथा को गाते हैं। अंतर्बाह्य प्रकृति का भव्य निरूपण तथा शैली की सरलता-सरसता उसकी विशेषताएँ हैं। नूतन उद्भावनाओं में भी मार्मिक और हृदयस्पर्शी प्रसंगों तथा बिन्दुओं का चयन उनके कवि-कर्म की सफलता का ही परिचायक है। साथ ही उनकी अभिव्यक्ति में न कहीं पांडित्य-प्रदर्शन की विवृति है और न कलागत चमत्कार के लिए सायास अलंकारों आदि के प्रयोग की कामना। कथ्य की सहजता और अभिव्यक्ति की नैसर्गिकता उनके काव्य-सौन्दर्य के दो प्रमुख बिन्दु हैं।

किन्तु अपभ्रंश-साहित्य में जैन-कवियों ने राम और कृष्ण की कथाओं को तर्कनिष्ठ बनाकर अपने ढंग से भाषाबद्ध किया। उनके द्वारा प्रणीत काव्यों में तीर्थकरों, चक्रवर्तियों

तथा समकालीन महापुरुषों के चरित्र को ही गूँथा गया है। पुष्पदंत के महापुराण के दो भाग हैं—आदिपुराण और उत्तरपुराण। उत्तरपुराण के एक अंश में कृष्ण की कथा 'हरिवंशपुराण' के रूप में निबंधित है और दूसरे अंश में राम-कथा का वर्णन है। लेकिन अपभ्रंश में राम-कथा का आरंभ महाकवि स्वयंभू के 'पउमचरिउ' से ही होता है।

अपभ्रंश के इन चरिउ काव्यों का काव्य-रूप तथा शिल्प-विधान पूर्ववर्ती प्राकृत और संस्कृत के प्रबन्ध-काव्यों से सर्वथा भिन्न और मौलिक है; वैसे वाल्मीकि रामायण की भाँति 'पउमचरिउ' का कथ्य पाँच काण्डों में विभक्त है—विद्याधरकाण्ड, अयोध्याकाण्ड सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड। इनमें कुल 90 संधियाँ हैं। कहीं-कहीं 'आशवास' शब्द का प्रयोग भी प्राकृत के अनुकरण का द्योतक है। ये संधियाँ कड़वकों में विभक्त मिलती हैं, जिनका समापन 'घत्ता छन्द' से होता है। साथ ही प्रत्येक कड़वक में अर्द्धालियों की संख्या सर्वत्र समान नहीं पाई जाती।

काव्यारंभ में स्वयंभू ने बड़ी विनम्रता के साथ अपनी अनभिज्ञता, काव्य-शास्त्रहीनता पूर्व-कवियों के प्रति पूज्य-भाव आदि काव्य-रूढ़ियों का परंपरानुसार निवेदन करते हुए भी कविता करने की अडिग आस्था और दुष्ट-जनों के रोष के लिए उन्हें आड़े हाथों लेने की बात बड़े आत्मा-विश्वास के साथ कही है—

बुहयण संयभु पई विण्णवइ । मई सरिसउ अण्णु णाहिँ कुकइ ॥  
 वायरणु कयावि ण जाणियउ । णउ वित्त-सुत्तु वक्खाणियउ ॥  
 णउ णिसुणियउ पंच महाय कव्वु । णउ भरहु गेउ लक्खणु वि सब्बु ॥  
 णउ बुज्झउ पिगल-पत्थारु । णउ भम्मह-दंडि अलंकारु ॥  
 ववसाउ तो वि णउ परिहरमि । वरि रड्डाबद्धु कव्वु करमि ॥  
 एँहु सज्जण लोयहोँ किउ विणउ । जं अबहु पदरिसिउ अप्पणउ ॥  
 जइ एम विरुसइ को वि खलु । तहोँ हत्थुत्थल्लिउ लेउ छलु ॥  
 अपभ्रंश के इस आदिकवि की यह विशेषता सचमुच अनूठी और बेजोड़ है।

अन्य जैन-काव्यों की भाँति पउमचरिउ का वर्ण्य-विषय भी धार्मिक भावना से अनुरजित है तथा सभी प्रधान-पात्र जिनभक्त हैं। जैन अपभ्रंश परम्परा में धार्मिक भावना विरहित काव्य की कल्पना संभव नहीं। संसार की अनित्यता, जीवन की क्षण-भंगुरता और दुःख-बहुलता दिखाकर विराग उत्पन्न करना, शान्त-रस में काव्य तथा जीवन का पर्यवसान ही इन कवियों का मूल प्रयोजन रहा है।

स्वयंभू के 'पउमचरिउ' में राम का मानवीय रूप ही मुखरित हुआ है। वाल्मीकि के राम की भाँति वह सभी मानवीय शक्तियों तथा दुर्बलताओं का प्रतिनिधि है। न तो उसे कोई महान् आदर्श चरित बनाया गया है और न अलौकिक शक्ति-पुंज। बल्कि मानव-रूप में उसे जैसा होना चाहिए, उसी रूप में बिना किसी आवरण के चित्रित कर दिया गया है। न कहीं राम की चारित्रिक कमजोरियों पर पर्दा डालने का प्रयास है और न गुणों को अत्यधिक उजागर करने की इष्टि का प्राचुर्य। सामान्य मानव को प्रबन्ध-काव्य का प्रतिपाद्य बनाने का यह सर्वप्रथम प्रयास स्वयंभू की उदात्तता का परिचायक है। यही कारण है कि

इस चरित्र-काव्य की कथा का आरंभ लोक-प्रचलित कुछेक शंकाओं के साथ होता है, जबकि पुराणों की श्रोता-वक्ता-शैली में मगध नरेश श्रेणिक जिनवर से प्रश्न करते हैं—

अइ रामहो तिहुयणु उवरे माइ। तो रावणु कहि तिय लेवि जाइ ॥  
अणए वि खरदूषण-समरे देव । पहु जुउभइ सुउभइ भिच्चु केव ॥  
किह वाणर गिरिवर उव्वहंति । बंधेवि मयरहइ समुत्तरंति ॥  
किह रावणु वहसुहु बीसहत्थु । अमराहिव--भुव-बंधण-समस्यु ॥<sup>4</sup>

स्वयंभू की इस मानवीय दृष्टि ने 'पउमचरिउ' के रूप को न केवल पूर्व और पर-वर्ती राम-काव्य-परंपरा से अलग दिया है बल्कि राम के चरित्र और व्यक्तित्व को लोक-जीवन की निधि बना दिया है। राम के मानवीय चरित्र का यह पुराण अन्वयतम है। जहां सभी प्रकार की विपत्तियों में आदिकवि ने राम के पौरुष को उजागर किया है, वहां शक्ति-हृत लक्ष्मण के मूर्च्छित शरीर पर असहाय साधारण मनुष्य की भांति उसे रोते-बिलखते भी दिखाया है। जो राम अपने पिता के वचनों के पालन हेतु मुनि-वेश में वन-वन भटकता है, वही अपनी पत्नी के वियोग में सम्पूर्ण प्रकृति को अपने आंसुओं से भिगोता है और साहसी कर्मवीर की भांति उसे पाने के लिए समुद्र पर रावण से युद्ध करता है। किन्तु तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति का पर्दाफाश पुष्पक-विमान में चढ़कर अयोध्या आगमन के समय अग्नि-परीक्षावाले प्रसंग में होता है। सीता राजा के उस उपवन में जाकर बैठ गई जहां राम ने निर्वासन दिया था।

तहो उव्वणहो मउभे आवासिय ।<sup>5</sup> पुनः प्रातः काल होने पर कान्ता की कान्ति को देखकर राम का विहंसना और नारी के लिए अपमानजनक शब्दों का प्रयोग—'अइ वि कुलगयाउ गिरवउजउ महिलउ होंति सुट्टु गिल्लउजउ'<sup>6</sup> अटपटा तो अवश्य है लेकिन राम के हंसने ने इस अशोभनीयता को धो दिया है साथ ही इन शब्दों में लोक-जीवन के व्यावहारिक कड़वे सत्य का स्वर भी तो मुखरित है। धर्मोन्मुख होने पर यह भावना सत्य के अधिक निकट है। जैन-कवियों के काव्य में यह सर्वत्र दर्शनीय है। अस्तु, इस स्थिति को धार्मिक परिवेश में 'पुरुष के श्याम चरित्र की पृष्ठभूमि'<sup>7</sup> कहना उचित नहीं। अंत में सीताजी के द्वारा भी कुछेक कठोर शब्दों को कहलवाकर—'पुरिस णिहीण होंति गुणवंत वि, तियहे ए पत्तिउज्जंसि मरंत वि'<sup>8</sup> स्वयंभू ने नारी-हृदय की कुण्ठा की अभिव्यक्ति किमपि नहीं की है, वस्तु सत्य को ही टटोला है।

वस्तुतः नारी तो पुरुष की शक्ति है जो पति-रूप में उसके विश्वास को प्राप्त कर और अधिक तेजोमय हो जाती है। गृहस्थ-जीवन का यह आदर्श मूल्य पति-पत्नि को परस्पर निकट लाता है, विच्छेदन की प्रेरणा कभी नहीं देता। अंत में सीताजी नर-नारी के अंतर को 'मरणे वि वेत्ति ए मेत्तइ तरुवह'<sup>9</sup> के दृष्टान्त से स्पष्ट करती हुई, अपने सतीत्त्व की दृढ़ता व्यक्त करती हैं—'सइ वडाय मइ अउजु समुत्तिभय ।<sup>10</sup> जैन-धर्मानुकूल कर्म-फल में विश्वास के कारण वे किसी को दोष न देकर इसे अपने किसी दुष्कर्म का ही फल कहती हैं—'सब्बु दोषु एउ बुक्किअ कम्महो'<sup>11</sup> और पंचलोचन करती है। आखिर यही तो वह उपाय है जिससे स्त्री-योनि में जन्म नहीं लेना पड़ेगा—

एवाहि तिह करेमि पुणु रहवइ, जिह ण होमि पडिवारी तियमइ ।<sup>12</sup>

इसी शम-भाव में 'पउमचरिउ' का पर्यवसान हो जाता है ।

मानव-मन की गहराई में उतरकर उसमें निहित सत्य को उभारने और चित्रित करने की अपभ्रंश के इस महाकवि में अनूठी क्षमता है, वे सच्चे संवेदनशील कवि हैं । काव्यगत विषय-विस्तार के बने रहने पर भी अनेक हृदयस्पर्शी अनछुए प्रसंगों की उद्भावना यहां देखे ही बनती है । जलक्रीड़ा, रनिवास आदि के इतिवृत्तात्मक प्रसंगों में भी कवि-कल्पना का माधुर्य और चातुर्य दर्शनीय है । किन्तु शृंगार और करुण से परिसिंचित कोमल प्रसंगों की परिकल्पना ने तो कवि-हृदय की भाव-प्रवणता को जैसे सहृदय की अक्षुण्ण निधि ही बना दिया है ।

सैनिक-पति की पत्नी युद्ध के लिए जाते समय उसे विदाई देती हुई गजमुक्ताओं की मांग कर रही है, मुखराग लगाकर दर्पण दिखाती है, नेत्रों में अंजन लगाकर मस्तक पर तिलक करती है, पान का बीड़ा देती है, कभी उसके साथ आलिंगनबद्ध होती है, कभी सुरति के लिए शृंगार करती है, फूलों का सेहरा बांधती है, नए-नए वस्त्र धारण करती है ।<sup>13</sup> शृंगार-भावना के इस उतावलेपन में न-जाने कितने घुले-मिले साहचर्य-स्वप्नों का साकार मूर्त्त विधान है । और अंत में युद्ध-भूमि की भावी आशंका से पत्नी का अन्तःकरण किस प्रकार भयाक्रांत है, शायद इसीलिए उसके भीतर का समूचा समर्पित भाव एक साथ अभिव्यक्त होने के लिए व्यग्र हो उठा है । इससे भी आगे सच्ची वीरांगना के रूप में पति को कर्म-च्युत न होने देने का सन्देश बड़ा ही करुणापूरित है—

घस्ता—कहे वि अंगे रसोज्जेण माइय, पिय रणबहुयएँ सहँ ईसाइउ ।

अइ तुहं तहे अणुराइउ वट्टहि, तो महु णहवय देवि पयट्टहि ॥<sup>14</sup>

इसी प्रकार शक्ति-आहत लक्ष्मण के लिए भरत का विलाप बड़ा ही मार्मिक और करुणाप्लावित है । राम का विलाप तो सर्वत्र मिलता है, लेकिन भरत का अंतःकरण तो जैसे टूट-टूटकर खंडित होने लगता है—

घस्ता—हा पई सोमिस्सि मरंतएण मरइ शिखत्तउ शासरहि ।

अत्तार-विहूणिय चारि जिह, अज्जु अणाही ह्य महि ॥<sup>15</sup>

हा भायर ! वरहिय—महुर वाणि । महु णिवडिओसि वाहियउपाणि ॥

हा । किं समुद्वे जल णिवहु सुट्टु । हा ! किह विहु कुम्भकडाहु फुट्टु ।

हा ! किह दिणयरु कर-णियरु चत्तु । हा ! किह अणंगु बोहणु पत्तु ॥

घस्ता—हा ! णिव्विसु किह धरणिउ धिउ, णिप्पहु ससि-सिहि सीयलउ ॥

टलरलिहई केम महि, केम समीरणु शिचचलउ ॥<sup>16</sup>

गए-मोत्तिउ सिघल बीवे मणि, बइरागरहो वज्जु पउर ।

आयइ सब्बइ लभंति जएँ, एवर ए लभइ भाइवर ॥<sup>17</sup>

अज्जु अणाही ह्य महि में सचमुच अनभिव्यक्त वेदना का पारावार निहित है । रावण के लिए मंदोदरी का विलाप तो हृदयविदारक है ही—उदठे भडारा केत्तिउ सुप्पइ ।<sup>18</sup>



किन्तु, घर के भेदी विभीषण का विलाप अछूता होने के साथ भाव-विभोर करने तथा अंतस् को उद्वेलित करने में पूर्ण सक्षम है—

चरण धरेवि एवए लगगउ । हा भायर ! मइ मुएवि कहि गउ ॥  
हा भायर ! दुण्णिहए भुत्तउ । सेज्ज मुएवि कि महियले सुत्तउ ॥<sup>19</sup>

तुहं ए जिओऽसि सयलु जिउ तिहुअणु । तुहं णु मुओऽसि मुअउ वदिय अणु ॥  
दिदिठ ण एट्ठ एट्ठ लंकाउरि । वाय ए एट्ठ एट्ठ मंदोयरि ॥

हार ण तुट्ठु तुट्ठु तारायणु । हियउ ण भिण्ण भिण्णु गयणंगणु ॥  
चक्कु ण दुक्कु दुक्कु एक्कतरु । आउ ए खुट्ठु खुट्ठु रयणायरु ॥  
जीउ ण गउ गउ आसा-पोट्टुलु । तुहं ण सुत्त सुत्तउ महिमंडुलु ॥<sup>20</sup>

यहां आउ ण खुट्ठु खुट्ठु रयणायरु, तथा जीउ ण गउ गउ आसा पोट्टुलु, में न केवल रावण के महान्तम व्यक्तित्व का संकेत होने से आत्मपीड़ा की व्यापकता है बल्कि शेष जीवन की आशा की इति की भी व्यंजना है। ऐसे और भी अनेक करुणा-पूरित प्रसंग उक्त महाकाव्य में द्रष्टव्य हैं। इसका एक ही मनोवैज्ञानिक कारण है—हृदय का परिष्करण और उदात्तीकरण। इस स्थिति के उपरान्त ही व्यक्ति धर्मोन्मुख हो पाता है। इन प्रसंगों की उद्भावना में कवि का भावुक-हृदय अपनी पूर्णता और समग्रता के साथ सर्वत्र डूबा और भीगा है।

इस प्रकार स्वयंभू सच्चे भाव-प्रवण कवि हैं। उनके 'पउमचरिउ' का फलक बड़ा व्यापक और विस्तृत है। मानव और मानवेतर प्रकृति के अनगिनत चित्र इसमें अंकित हैं। भाव और चिंतन, मन और बुद्धि का ऐसा मणि-कांचन संतुलन/सामंजस्य अन्यत्र दुर्लभ है। अपभ्रंश भाषा पर उनका अद्वितीय अधिकार है। लोक-प्रचलित अपभ्रंश को काव्यात्मक लोच और व्यंजना के साथ प्रवाह-संयुक्त बनाए रखने की उनकी सामर्थ्य बेजोड़ है। बिखरे लोक-जीवन की बहुमूल्य अनुभूतियों और संवेदनाओं ने उनके काव्यत्व में चार चांद लगा दिये हैं। साथ ही लोकाभिव्यक्ति के न जाने कितने-पुरातन मात्रिक छन्दों के नैसर्गिक प्रयोग ने उनकी कविता को कला के सौन्दर्य से अभिमंडित कर दिया है। शिल्प और काव्य रूप की दृष्टि से अपभ्रंश की कड़वक-शैली का ऐसा पुष्ट तथा सहृदय-ग्राह्य प्रयोग उनके इस काव्य का अद्भुत आकर्षण है। वे सचमुच अपभ्रंश के प्रतिष्ठित आदिकवि वाल्मीकि हैं। उन्होंने काव्य-क्षेत्र में नये भाव और नये सृजन को प्रेरणा दी है। जो भूमिका संस्कृत-काव्य के उन्नयन और समृद्धि में आदिकवि वाल्मीकि ने निभाई, उसी का निर्वाह स्वयंभू ने अपने 'पउमचरिउ' के माध्यम से अपभ्रंश साहित्य को प्रतिष्ठित करने में किया है। दोनों का सृजन अपने युग की लोक-संपत्ति है। अंतर मात्र इतना है कि चरितनायक कहीं इतिहास पुरुष है और कहीं धर्मपुरुष। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में—'स्वयंभू आदि कवि अपनी पांच शताब्दियों में घास नहीं छीलते रहे। उन्होंने काव्य-निधि को और समृद्ध भाषा को और परिपुष्ट करने का जो महान् काम किया है वह हमारे साहित्य को उनकी ऐतिहासिक देन है।'<sup>21</sup>

अपभ्रंश-भारती

2. पउ., 1.3.9-10
  3. वही 1.3.1-13
  4. वही 1.10.3-7
  5. वही 83.7.5
  6. वही 83.8.2
  7. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, डॉ. नामवरसिंह, पृ. 181।
  8. पउ 83.8.8
  9. वही 83.9.6
  10. वही 83.9.7
  11. वही 83.17.3
  12. वही 83.17.9
  13. वही 59.3.9
  14. वही 59.3.10
  15. वही 69.10.9
  16. वही 69.11.3-8
  17. वही 69.12.9
  18. वही 76.11.1
  19. वही 76.2.5-8
  20. वही 76.3.2-6
  21. हिन्दी काव्य धारा, पृ. 13।
-

## जगत में जीव अकेला

“इउ घर इउ परियणु इउ कलत्तु”, णउ वुज्झहि जिह सयलोहि चत्तु ।  
एक्केण करेव्वउ विहरकाले, एक्केण वसेव्वउ जल-वमाले ।  
एक्केण वसेव्वेउ त्तिहि णिगोएँ, एक्केणरएव्वउ पिय-विओएँ ।  
एक्केण भमेव्वउ भव समुद्धे, कम्मोह जल भर रउद्धे ।  
एक्कहो जे दुक्खु एक्कहो जे सुक्खु, एक्कहो जे बन्धु एक्कहो जे मोक्खु ।  
एक्कहो जे पाउ एक्कहो जे धम्मु, एक्कहो जे मरणु एक्कहो जे जम्मु ।

गहि तेसएँ विहुरे सयण-सयाइँ णं दुक्कियइँ ।  
पर वेण्णि सयाइ जीवहो दुक्किय-सुक्कियइँ ।

‘यह घर, ये परिजन, यह स्त्री’—इनको सबने छोड़ा है, क्या यह नहीं जानते ? आपद्काल में अकेले ही विसूरते हैं और अकेले ही चिता में जलते हैं । निगोद में अकेले ही रहना होता है और प्रिय वियोग में अकेले ही आंसू बहाने पड़ते हैं । इस संसार में कर्म-जाल का मोह ऐसा ही है जैसे समुद्र के जलचर । उस रौद्र भवसागर में निस्सहाय ही भटकना होता है । सुख-दुःख, बन्ध-मोक्ष, धर्म-अधर्म, जन्म-मरण सब अकेले ही होगा । ऐसे संकट काल में कितने ही सगे-संबंधी क्यों न हों, कोई सहायक नहीं होता । अगर साथ देते हैं तो केवल दो ही, जीव के अच्छे-बुरे कर्म ।

# महाकवि स्वयंभूदेव की भाषा में प्रयुक्त स्वर-ध्वनियों का विवेचन

—डॉ. कैलाशनाथ टण्डन



किसी भाषा के विश्लेषण के पूर्व उसकी ध्वनियों का विशिष्ट ज्ञान परमावश्यक है। इस सम्बन्ध में जार्ज सैम्पसन् का कथन है कि—ध्वनिशास्त्र से अनभिज्ञ भाषाशास्त्र का अध्यापक उसी प्रकार निरर्थक है जिस प्रकार शरीरविज्ञान से अनभिज्ञ डाक्टर।

सन् 1877 में हेनरीस्वीट ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये थे—“ध्वनिशास्त्र का महत्त्व भाषा के समस्त प्रकार के अध्ययनों के लिए चाहे वह नितान्त सैद्धांतिक हो अथवा प्रयोगभूत-निर्विवाद परमावश्यक रूप में स्वीकार कर लिया गया है।”

ध्वनि-शास्त्र के अर्थ में प्राचीन भारत में ‘शिक्षा’ शब्द का प्रयोग प्रचलितप्राय था। व्याकरण और वेद के अध्येता के लिए तत्संबंधी शिक्षा का पूर्ण ज्ञान अनिवार्य माना गया था।

ध्वनि-सिद्धांत का अतिसूक्ष्म विवेचन करनेवाले सर्वप्रथम वैयाकरण ही थे। इसका संबंध ध्वनियों से है। इसके अन्तर्गत मानव वागेन्द्रियों से निःसृत सार्थक ध्वनियों का विश्लेषण, वर्णन एवं वर्गीकरण किया जाता है। वस्तुतः ध्वनिशास्त्र भाषा-तत्त्व का मूलाधार एवं मूलमंत्र है।

प्रत्येक भाषा में कुछ सार्थक ध्वनियाँ होती हैं जो लिपि-विज्ञान में वर्ण कहलाती हैं। ये ध्वनियाँ स्वर और व्यंजन इन दोनों भागों में सदैव से ही विभक्त होती रही हैं। अर्थात् ध्वनियों का प्राचीनतम एवं बहु-प्रचलित वर्गीकरण स्वर और व्यंजन के रूप में ही मिलता है।

अपभ्रंश-भाषा में प्राकृत की अपेक्षा दो स्वर-ध्वनियां अधिक हैं और वे हैं—ह्रस्व ऐ और ह्रस्व ओ ।

पहले हम संकेत कर चुके हैं कि किसी भी भाषा की ध्वनियों का अध्ययन दो वर्गों में रख कर किया जा सकता है—1. स्वर तथा 2. व्यंजन ।

अपभ्रंश में 11 स्वर तथा 29 व्यंजन ध्वनियां हैं, इस प्रकार से अपभ्रंश भाषा में वर्णों की कुल संख्या 40 है ।

साहित्यिक अपभ्रंश के ध्वनि-समूह को देखने के पश्चात् जब हम स्वयंभूदेव की भाषा को देखते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि उनकी भाषा में उन सभी ध्वनियों का प्रयोग हुआ है जो परिनिष्ठित अपभ्रंश में मान्य थीं । किन्तु आलोच्य कवि की भाषा में कुछ ऐसी भी ध्वनियां प्रयुक्त हुई हैं जो मान्य ध्वनियों की कोटि में नहीं आतीं यथा ङ्, ञ्, ष् तथा क्ष् ध्वनि । इस प्रकार से आलोच्य कवि की भाषा में वर्णों की कुल संख्या 44 है ।

### स्वयंभूदेव द्वारा प्रयुक्त स्वर-ध्वनियों का विवेचन

#### स्वर ध्वनियां

##### मूल स्वर

ह्रस्व—अ, इ, उ, ऐ, ओ

दीर्घ—आ, ई, ऊ, ए, औ

अनुस्वार—(ँ)

##### ऐ और ओ

संस्कृत की 'ऐ' और 'औ' ध्वनियां कवि की ध्वनियों में नहीं हैं, इससे यह प्रकट होता है कि या तो वे अपभ्रंश की प्रकृति के विरुद्ध हैं, उनका प्रयोग अपभ्रंश में भाषा बतौर नहीं आ पाया था । फिर भी हम उसकी तुलना में इन ध्वनियों का विवेचन करेंगे । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अपभ्रंश की ध्वनियां संस्कृत से आई हैं, अपितु उसका ध्वनि भंडार का उससे क्या मेल या विरोध है, यह देखना है—

ए/इ < ऐ, तेल्ल,<sup>1</sup> मुवणोक्क, < मुवनैक,<sup>2</sup> इन्दु < ऐन्द्र,<sup>3</sup> जिह-जिह < जैसे-जैसे<sup>4</sup>

##### अथवा अइ रूप में

कइलास < कैलाश,<sup>5</sup> वइयाकरण < वैयाकरण<sup>6</sup>

##### ओ < औ

मोत्तिय < मौत्तिक,<sup>7</sup> सोमित्त < सोमित्र<sup>8</sup>

##### अथवा अउ रूप में—

चउदह < चौदह,<sup>9</sup> गउरी < गौरी<sup>10</sup>

#### ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति

ह्रस्वीकरण अपभ्रंश की प्रवृत्तियों में से एक विशेष प्रवृत्ति रही है । इस प्रवृत्ति को अपभ्रंश काव्यों में प्रचुरता से देखा जा सकता है । क्योंकि लघुच्चरित ह्रस्व वर्णों का प्रचुर प्रयोग ह्रस्वीकरण की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं । इसी लघु उच्चारण के फलस्वरूप अपभ्रंश

में ह्रस्व ँ और ह्रस्व ओँ का जन्म हुआ जो ह्रस्व अकार, इकार में और उकार की भांति अपना पृथक् अस्तित्व रखने लगे और मात्रा में भी एक मात्रिक बने रहे। आलोच्य कवि की भाषा भी इस प्रवृत्ति से अछूती नहीं रह सकी। यथा—

मोक्ख <मोक्ष,<sup>11</sup> जोहु <योधा,<sup>12</sup> रज्ज <राज्य,<sup>13</sup> तिण्णि <तीन,<sup>14</sup> चुक्क <चूक<sup>15</sup>,

ऋ का प्रयोग

‘ऋ’ लिपि-चिह्न तथा ‘ऋ’ के मात्रिक लिपि-चिह्न [ऋ] का प्रयोग आलोच्य कवि के ग्रन्थों में कहीं नहीं हुआ है किन्तु ‘ऋ’ का वर्णविकार कतिपय स्थलों पर अवश्य हुआ है जो इस प्रकार है—

‘ऋ’ का वर्णविकार—

अ—राच्च <नृत्य,<sup>16</sup> मय <मृत,<sup>17</sup> गह्वइ <गृहपति,<sup>18</sup> करवाल <कृपाण,<sup>19</sup> कुलहर < कुलगृह<sup>20</sup> ।

इ—हिय <हृदय,<sup>21</sup> विहप्पइ <वृहस्पति,<sup>22</sup> अमिय <अमृत,<sup>23</sup> घिट्ठ <घृष्ट,<sup>24</sup> कियन्त <कृतान्त,<sup>25</sup> दिढ <दृढ<sup>26</sup> ।

उ—पुहई <पृथ्वी,<sup>27</sup> मुउ <मृत,<sup>28</sup>

ए—गेहिणि <गृहिणि<sup>29</sup>

रि—रिद्धि <ऋद्धि,<sup>30</sup> रोरिस्ती <नैऋति<sup>31</sup>

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि ‘ऋ’ का सर्वाधिक वर्णविकार आलोच्य कवि की भाषा में अ तथा इ में ही प्राप्त है।

मूलस्वरों का प्रयोग

आलोच्य कवि की भाषा में प्रयुक्त सभी मूल स्वर पद के आदि, मध्य और अन्त तीनों स्थानों में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु ह्रस्व ँ और ओँ पद के अन्त में न प्रयुक्त होकर आदि और मध्य में ही प्रयुक्त हुए हैं। यथा—

आदि	मध्य	अन्त
अ — अभरिस <sup>32</sup>	जुअलु <sup>33</sup>	मुअ <sup>34</sup>
आ — आउ <sup>35</sup>	हुआअणिय <sup>36</sup>	मुआ <sup>37</sup>
इ — इच्छमि <sup>38</sup>	लइउ <sup>39</sup>	करइ <sup>40</sup>
ई — ईसाएवि <sup>41</sup>	मईउ <sup>42</sup>	इन्दई <sup>43</sup>
उ — उरू <sup>44</sup>	भउडु <sup>45</sup>	दूउ <sup>46</sup>
ऊ — ऊणउ <sup>47</sup>	भऊह <sup>48</sup>	पडिडऊ <sup>49</sup>
ए — एत्तिउ <sup>50</sup>	मुएप्पिणु <sup>51</sup>	संसारए <sup>52</sup>
एँ — एँहु <sup>53</sup>	घएँण <sup>54</sup>	राएँ <sup>55</sup>
ओँ — जोँकरेवि <sup>56</sup>	तइलोँक्क <sup>57</sup>	—
ओ — ओसारिय <sup>58</sup>	विओए <sup>59</sup>	सामिओ <sup>60</sup>

### अनुनासिक स्वर

स्वयंभूदेव की भाषा में चन्द्रबिन्दु तथा अनुस्वार दोनों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है जहाँ तक अनुस्वार के प्रयोग का प्रश्न है वहाँ सभी स्वर सभी स्थानों पर अनुनासिक नहीं मिलते। यथा—

आदि	मध्य	अन्त
अ — अंसु <sup>61</sup>	—	—
आ — आंइउ <sup>62</sup>	—	—
इ — —	—	जालइं <sup>63</sup>
ई — —	—	—
उ — —	—	कहाणउं <sup>64</sup>
ऊ — —	—	—
ए — —	—	—
ए — —	—	घाएं <sup>65</sup>
ओ — —	—	—
ओ — —	—	ग्रहो <sup>66</sup>

### स्वर प्रयोग

अपभ्रंश में मूल स्वरों के अतिरिक्त अनेक स्वरों का संयोग भी पाया जाता है। संयोग से तात्पर्य है कि दो या दो से अधिक स्वरों की ऐसी समीप स्थिति जिसमें संधि कार्य न हो सके और दोनों स्वर स्पष्ट रूप से बिना कोई विकार उत्पन्न किये उच्चरित हों। स्वर-संयोग के अनेक उदाहरण आलोच्य कवि की भाषा में बराबर मिलते हैं। अधिकांश उदाहरण दो स्वरों के प्राप्त होते हैं किन्तु तीन और चार स्वरों के संयोगवाले उदाहरण भी देखे जा सकते हैं। दो स्वरों की संप्रयुक्ता निम्न उदाहरणों में द्रष्टव्य है—

अइ — मुअइ,<sup>67</sup> अइदउ<sup>68</sup>  
 अई — पईसई<sup>69</sup> दीसई<sup>70</sup>  
 अउ — कञ्चुअउ,<sup>71</sup> तउ<sup>72</sup>  
 अऊ — मऊह,<sup>73</sup> चऊहि<sup>74</sup>  
 अए — धिएण,<sup>75</sup> कइइएण<sup>76</sup>  
 अए — घए,<sup>77</sup> तिलए<sup>78</sup>  
 अओ — थकओ,<sup>79</sup> दीवओ<sup>80</sup>  
 आआ — पाआर<sup>81</sup>

आइ — थाइ,<sup>82</sup> आइय<sup>83</sup>  
 आई — आईहि<sup>84</sup>  
 आउ — आउ,<sup>85</sup> जाउ<sup>86</sup>  
 आऊ — चित्ताऊडएण,<sup>87</sup> आऊरिउ<sup>88</sup>  
 आए — आएहि,<sup>89</sup> घाएहि<sup>90</sup>  
 आए — जाए,<sup>91</sup> बहुआए<sup>92</sup>  
 आओ — काओ,<sup>93</sup> जाओ<sup>94</sup>

इभ — टूभिभ्र,<sup>95</sup> तुरिभ्र<sup>96</sup>  
 इभा — गिावासु<sup>97</sup>  
 इउ — दइउ<sup>98</sup> धाइउ<sup>99</sup>  
 इऐ — गिएवि,<sup>100</sup> घिएण<sup>101</sup>  
 इए — सइए,<sup>102</sup> रइए<sup>103</sup>  
 इओ — पलोइओ,<sup>104</sup> सामिओ<sup>105</sup>  
 ईभ — वीभ्रमउज्झा<sup>106</sup>  
 ईई — वीई<sup>107</sup>  
 ईउ — भईउ,<sup>108</sup> सुगीउ<sup>109</sup>  
 ईए — मायरीए,<sup>110</sup> सीए<sup>111</sup>  
 उभ — हणुभ्र,<sup>112</sup> मुभ्र<sup>113</sup>  
 उभा — भुभा,<sup>114</sup> हुभासे<sup>115</sup>  
 उभ्र — संभ्र,<sup>116</sup> पसूभ्र<sup>117</sup>  
 उभा — जमदूभा,<sup>118</sup> जूभारो<sup>119</sup>  
 उइ — उइय,<sup>120</sup> मारुइ<sup>121</sup>  
 उइ — सच्चमूइ,<sup>122</sup> वसुमूइ<sup>123</sup>  
 ऊई — दूई,<sup>124</sup> विहूई<sup>125</sup>  
 उउ — मउउ,<sup>126</sup> मुउ<sup>127</sup>  
 ऊउ — दूउ,<sup>128</sup> हूउ<sup>129</sup>  
 उऐ — हणुएण,<sup>130</sup> सुएण<sup>131</sup>

उए — जुए,<sup>132</sup> मुए<sup>133</sup>  
 उओ — थुओ<sup>134</sup>  
 ऊओ — हूओ<sup>135</sup>  
 ऊए — दूएण<sup>136</sup>  
 एऊ — भाइरोभ्र<sup>137</sup>  
 ऐइ — एइ<sup>138</sup>  
 एइ — लेइ,<sup>139</sup> धरोइ<sup>140</sup>  
 एउ — केउ,<sup>141</sup> छेउ<sup>142</sup>  
 एऊ — केऊर<sup>143</sup>  
 एए — एए,<sup>144</sup> छेए<sup>145</sup>  
 एओ — छेओ<sup>146</sup>  
 ओभ — विओभ्र,<sup>147</sup> पोभ्रण<sup>148</sup>  
 ओइ — पलोइओ,<sup>149</sup> कोइलउ<sup>150</sup>  
 ओइ — होइ,<sup>151</sup> जोइयउ<sup>152</sup>  
 ओउ — लोउ<sup>153</sup>  
 ओउ — गोउदाइ<sup>154</sup>  
 ओऊ — कोऊहल<sup>155</sup>  
 ओए — होएवि,<sup>156</sup> पोएवि<sup>157</sup>  
 ओए — विच्छोए,<sup>158</sup> णिओए<sup>159</sup>  
 ओओ — विओओ,<sup>160</sup> दोओ<sup>161</sup>

दो स्वरो के संयोग के अतिरिक्त आलोच्य कवि की भाषा में तीन-तीन, चार-चार स्वरो के संयोग के भी कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं, यथा—

भइउ — दइउ,<sup>162</sup> लइउ<sup>163</sup>  
 भाइउ — धाइउ,<sup>164</sup> आइउ<sup>165</sup>  
 भइए — लइए,<sup>166</sup> मालइए<sup>167</sup>  
 भाइए — धाइए,<sup>168</sup> भाइए<sup>169</sup>  
 भएउ — रामएउ<sup>170</sup>  
 भाइओ — भाइओ,<sup>171</sup> धाइओ<sup>172</sup>  
 इओओ — विओओ<sup>173</sup>  
 ओइउ — वोइउ,<sup>174</sup> पलोइउ<sup>175</sup>  
 उभइ — दुभइ,<sup>176</sup> सुभइ<sup>177</sup>  
 उभए — सुभए,<sup>178</sup> चुभए<sup>179</sup>

उइउ — उइउ,<sup>180</sup> कुइउ<sup>181</sup>  
 ऊभए — दूभए<sup>182</sup> पसूभए<sup>183</sup>  
 ऊभउ — हूभउ,<sup>184</sup> दूभउ<sup>185</sup>  
 एउभ — पेउभ<sup>186</sup>  
 ओभइ — जोभइ,<sup>187</sup> सोभइ<sup>188</sup>  
 ओइऐ — धोइएण<sup>189</sup>  
 ओइओ — वोइओ<sup>190</sup>  
 उभउ — कच्चुभउ<sup>191</sup>  
 एभइए — केभइए<sup>192</sup>

दो और तीन स्वरो के संयोगवाले प्रयोग आलोच्य कवि की भाषा में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं किन्तु चार स्वरो के संयोगवाला एक ही प्रयोग प्राप्त होता है ।



आलोच्य कवि की भाषा में ऐसे भी दो स्वरों के संयोग प्राप्त होते हैं जिसमें से कोई एक स्वर सानुनासिक होता है। इस प्रकार के प्राप्त उदाहरणों में अधिकांशतः परवर्ती स्वर ही सानुनासिक हैं, यथा—

अइं — पइं, 193 मइं<sup>194</sup>  
 अउं — अवसाणउं, 195 डउं<sup>196</sup>  
 अएं — तेहएं, 197 एहएं<sup>198</sup>  
 आइं — णाइं, 199 वण्णाइं<sup>200</sup>  
 आउं — जाउं<sup>201</sup>  
 आएं — धाएं, 202 कसाएं<sup>203</sup>  
 ईअं — वीअं<sup>204</sup>

इउं — किउं, 205 सेठिउं<sup>206</sup>  
 इएं — केयइएं, 207 मिलिएं<sup>208</sup>  
 ईएं — जीएं<sup>209</sup>  
 उएं — मुएं<sup>210</sup>  
 अइं — गिइइं<sup>211</sup>  
 ऊएं — समूएं, 212 हूएं<sup>213</sup>  
 एएं — तेएं<sup>214</sup>  
 ओएं— विच्छोएं, 215 विओएं<sup>216</sup>

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रायः सभी परवर्ती अनुनासिक स्वर ह्रस्व ही हैं, केवल एक दीर्घ अनुनासिक स्वर 'पउमचरिउ' में उपलब्ध है जिसे उक्त उदाहरणों में दिखाया गया है। ऐसे विलक्षण प्रयोग कवि की भाषागत विशिष्टता के ही द्योतक हैं।

### अनुच्चरित अ (ऽ)

आलोच्य कवि की भाषा में अनुच्चरित (ऽ) का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है जिसे संस्कृत में अवग्रह (ऽ) कहते हैं यथा—

जालऽसरि, 217 पाऽवलक्खणु, 218 तावऽण्णेक्के, 219 भीणाऽवुह<sup>220</sup> धण्णोऽसि, 221 प्रायऽण्णेक्के, 222 आदि। स्पष्टतः इस प्रकार के प्रयोग उनके संस्कृत ज्ञान का ही परिचायक है।

आलोच्य कवि की भाषा में पदान्त तथा अपदान्त अनुस्वार का बहुलता से प्रयोग होने के साथ ही अपदान्त अनुस्वार के लिए परसवर्ण का प्रयोग भी देखने को मिलता है यथा—

लक्का, 223 अङ्गारउ, 224 अङ्ग, 225 दण्ड, 226 पवणाञ्जयासु, 227 आदि सदृश प्रयोगों से स्पष्ट होता है कि अपभ्रंश में भी यह नियम विद्यमान था और न्यूनाधिक मात्रा में प्रयोग भी होता था किन्तु मुख्य रूप से अपभ्रंश में अनुस्वार-प्रवृत्ति की ही प्रधानता थी।

व्यंजन लोप होने पर क्षतिपूर्त्यर्थं तत्पूर्ववर्ती स्वर के अन्त में भी अनुस्वार का आगम हो जाता है। इसी कारण से स्वर दीर्घ नहीं होता। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

अंसु <अश्रु, 228 दंसण <दर्शन<sup>229</sup>

आलोच्य कवि की भाषा में सकारण सानुनासिकता के अतिरिक्त अकारण सानुनासिकता के सदृश प्रयोग भी हैं। पुराने आलोचक भी अकारण सानुनासिकता की बात करते हैं, वैसे ये छन्द के आग्रह के कारण भी हैं और विभक्ति विपर्यय के कारण भी। सुग्गीवें रामेलक्खणें <सुग्गीव, राम, लक्ष्मण, 230 सुरपुरं <सुरपुर, 231 सूलं <त्रिशूल<sup>232</sup> जिणालयं <जिणालय<sup>233</sup>।

## निरनुनासिकीकरण

अपभ्रंश में अनुनासिकीकरण के विपरीत निरनुनासिकीकरण की भी प्रवृत्ति देखी जाती है। यह प्रवृत्ति क्षतिपूर्ति या समीकरण के फलस्वरूप है। कहीं-कहीं शब्द फँस भी गया है।

खग < खंग, <sup>234</sup> भउ < भौं, <sup>235</sup> सीहरणाय < सिंहनाद <sup>236</sup>

## स्वर परिवर्तन

स्वर-परिवर्तन की विविधता और बहुलता के कारण ही अपभ्रंश भाषा के व्याकरण में आचार्य हेमचन्द्र ने 'स्वराणां स्वराः प्रायोपभ्रंशं' जैसे सूत्र का निर्माण कर किसी स्वर के स्थान पर किसी भी स्वर के हो जाने का नियम बताया। इस प्रकार की प्रवृत्ति आलोच्य कवि की भाषा में बहुतायत से देखी जाती है, यथा—

अ > आ	महिष > महिसा <sup>237</sup>	ई > अ	ज्योतिषी > जोइस <sup>248</sup>
अ > इ	सुन्दर > सुन्दरि <sup>238</sup>	ई > इ	मंदोदरी > मंदोयरि <sup>249</sup>
अ > ई	चंचलचित्त > चंचलचित्ती <sup>239</sup>	ई > ए	सुन्दरी > सुन्दरेण <sup>250</sup>
अ > उ	जस्स > जासु <sup>240</sup>	उ > अ	बन्धु > बन्ध <sup>251</sup>
अ > ऐ	तत्र > तेत्थु <sup>241</sup>	उ > ऊ	जम्बु > जम्बू <sup>252</sup>
अ > ए	मित्र > मिन्ते <sup>242</sup>	ऊ > उ	पूर्णा > पुण्ण <sup>253</sup>
अ > ओ	पलट > पलोट्ट <sup>243</sup>	ए > अ	नेत्र > णयरा <sup>254</sup>
अ > ओ	समवसरण > समोसरणु <sup>244</sup>	ए > इ	घरणेन्द्र > घरणिन्द <sup>255</sup>
आ > अ	पाताल > पयाल <sup>245</sup>	ओ > उ	भोग > मुत्त <sup>256</sup>
आ > इ	खारा > खारइ <sup>246</sup>		
इ > ऐ	इयत > एत्तिय <sup>247</sup>		

'ऋ' का विवेचन वर्णविकार शीर्षक के अन्तर्गत सविस्तार किया जा चुका है अतएव यहां उसका पिष्टपेषण करना समीचीन नहीं।

उक्त विवेचित स्वर-परिवर्तन के अतिरिक्त आलोच्य कवि की भाषा में कुछ और भी परिवर्तन द्रष्टव्य हैं जिसमें स्वरलोप और स्वरागम प्रमुख हैं, यथा—

## स्वर लोप

### आदिस्वर लोप

अहम > हउं, <sup>257</sup> आक्रन्दन > कन्दन्ति <sup>258</sup>

### मध्यस्वर लोप

कार्य > कज्ज, <sup>259</sup> मांस > मंस <sup>260</sup>

## अन्त्यस्वर लोप

प्रशंसा > पसंस,<sup>261</sup> कन्या > कण्ण<sup>262</sup>

## स्वरागम

## आदि स्वरागम

रहट > अरहट्ट,<sup>263</sup> रुट > आरुट्ठ<sup>264</sup>

## मध्यस्वरागम

स्वप्न > सिविण,<sup>265</sup> दंष्ट्रा > दाढा<sup>266</sup>

## अन्त्यस्वरागम

हनुमत > हणुउ<sup>267</sup> कमल > कमलु<sup>268</sup>

1. पउमचरिउ	45.12.12	23.	49.12.2
2.	53.1.1	24.	43.15.6
3.	45.4.11	25.	43.9.5
4.	48.13.1	26.	43.17.3
5.	45.1.7	27.	50.9.5
6.	50.2.7	28.	44.9.6
7.	45.4.8	29.	48.2.4
8.	43.2.5	30.	46.2.2
9.	54.10.1	31.	56.7.5
10.	44.5.11	32.	43.2.9
11.	44.1.1	33.	43.5.9
12.	50.8.5	34.	43.2.4
13.	43.6.7	35.	43.3.9
14.	47.7.9	36.	43.8.9
15.	47.3.4	37.	51.2.9
16.	43.1.7	38.	49.14.2
17.	45.8.1	39.	43.2.6
18.	47.1.11	40.	44.1.9
19.	51.11.7	41.	55.10.7
20.	1.10.4	42.	45.12.7
21.	44.16.10	43.	53.10.1
22.	43.9.7	44.	48.11.5

45.	43.10.9	81.	22.5.11
46.	43.3.10	82.	44.12.6
47.	45.10.10	83.	45.10.9
48.	46.1.1	84.	3.1.12
49.	53.5.8	85.	43.3.9
50.	43.2.9	86.	43.5.8
51.	43.4.2	87.	49.8.13
52.	53.1.2	88.	5.3.3
53.	43.4.8	89.	47.6.9
54.	48.5.4	90.	48.5.9
55.	44.6.9	91.	45.15.1
56.	43.3.11	92.	43.16.9
57.	44.7.3	93.	49.8.15
58.	43.7.1	94.	6.5.2
59.	45.15.9	95.	50.2.9
60.	44.5.2	96.	12.4.8
61.	18.10.9	97.	1.6.1
62.	44.7.7	98.	43.16.4
63.	52.9.1	99.	44.8.3
64.	45.6.1	100.	46.2.3
65.	51.6.10	101.	47.5.7
66.	44.4.7	102.	43.18.3
67.	52.2.10	103.	43.18.4
68.	50.10.1	104.	3.1.12
69.	45.4.1	105.	44.5.2
70.	45.4.1	106.	6.15.3
71.	5.4.13	107.	4.4.4
72.	47.5.5	108.	45.12.6
73.	46.1.1	109.	43.6.9
74.	2.3.5	110.	45.9.2
75.	46.1.10	111.	26.20.7
76.	46.6.10	112.	43.11.3
77.	46.6.3	113.	43.7.6
78.	45.1.1	114.	51.2.3
79.	46.5.8	115.	5.2.7
80.	46.10.2	116.	47.9.6
		117.	54.9.4

118.	45.12.13	155.	5.5.1
119.	42.10.5	156.	2.15.8
120.	45.9.9	157.	28.2.9
121.	53.6.2	158.	45.15.9
122.	22.4.6	159.	55.11.3
123.	33.2.5	160.	24.5.5
124.	15.12.8	161.	24.5.4
125.	44.5.7	162.	40.2.3
126.	26.6.4	163.	43.2.6
127.	5.6.5	164.	47.10.4
128.	43.3.10	165.	50.3.3
129.	4.11.8	166.	32.16.7
130.	46.2.3	167.	51.14.2
131.	48.6.7	168.	53.2.1
132.	46.6.2	169.	53.2.1
133.	23.7.4	170.	1.14.1
134.	44.5.7	171.	52.8.1
135.	6.15.6	172.	52.8.1
136.	54.1.9	173.	41.2.8
137.	8.12.13	174.	48.2.1
138.	45.7.9	175.	28.6.1
139.	51.13.6	176.	49.2.1
140.	51.13.5	177.	17.15.3
141.	13.9.6	178.	29.7.9
142.	44.8.5	179.	29.7.9
143.	15.14.6	180.	1.16.9
144.	56.11.2	181.	56.10.3
145.	51.8.7	182.	12.6.3
146.	44.5.9	183.	54.9.4
147.	49.9.4	184.	47.9.6
148.	4.2.7	185.	55.4.4
149.	25.13.1	186.	50.11.9
150.	6.6.6	187.	39.1.5
151.	6.3.9	188.	41.18.6
152.	6.6.3	189.	33.13.5
153.	3.12.2	190.	40.6.9
154.	1.7.7	191.	45.4.3
		192.	51.14.21

193.	43.16.4	231.	46.2.3
194.	1.3.1	232.	44.5.9
195.	45.6.1	233.	44.5.1
196.	56.1.8	234.	46.6.9
197.	48.5.3	235.	49.8.13
198.	54.8.9	236.	50.5.10
199.	43.5.3	237.	1.10.8
200.	45.11.10	238.	48.15.4
201.	42.4.5	239.	4.9.9
202.	51.6.10	240.	1.6.8
203.	50.8.7	241.	44.6.7
204.	21.11.4	242.	49.1.6
205.	44.11.9	243.	49.4.6
206.	6.10.1	244.	5.6.6
207.	3.1.12	245.	43.3.11
208.	45.2.9	246.	45.12.11
209.	7.12.7	247.	49.10.6
210.	45.5.9	248.	8.12.4
211.	52.2.8	249.	49.13.1
212.	1.2.10	250.	48.15.4
213.	53.11.8	251.	3.1.10
214.	5.1.5	252.	1.10.9
215.	45.15.9	253.	50.10.9
216.	49.9.1	254.	49.12.1
217.	46.7.2	255.	2.14.5
218.	49.8.1	256.	43.15.2
219.	50.8.10	257.	44.15.3
220.	50.13.3	258.	44.8.3
221.	56.8.8	259.	43.12.7
222.	51.9.9	260.	49.16.3
223.	44.10.9	261.	50.6.4
224.	43.9.6	262.	48.13.1
225.	43.6.3	263.	45.7.9
226.	43.10.6	264.	45.2.7
227.	43.7.6	265.	50.8.1
228.	46.6.11	266.	51.6.1
229.	43.19.7	267.	48.11.5
230.	43.10.9	268.	43.13.3

## जरा न जरी

गय बियहा जोठवणु ल्हसिउ देव, .....  
..... पढमाउसु जर धवलन्ति आय ।  
गइ तुट्टिय बिहडिय संधि-बंध, णसुणन्ति कण्ण लोयण गिरन्ध ।  
सिर कम्पइ मुहेँ पक्खलइ वाय, गय वन्त सरीरहोँ णट्ट छाय ।  
परिगलिउ रहिर थिउ णवर चम्मु, महु एत्थुजेँ हुउ रां अवर जम्मु ।  
गिर-णइ-पवाह ण वहन्ति पाय, .....  
.....

—यौवन ढल गया और वे दिन बीत गए । पहले ही स्पर्श में सफेदी पोतती जरा आती है । गति टूट चुकी है, सन्धि-बन्ध ढीले हो गए हैं । न कान सुनते हैं और न आंखों से दिखता है । सिर कांपता रहता है और वाणी मुंह में ही लड़खड़ाती रहती है । दांत टूट गए हैं और शरीर की शोभा क्षीण हो गई है । रक्त गलकर सूख गया है और चमड़ी ही चमड़ी बची है । मैं अब ऐसा बदल गया हूँ मानो दूसरा जन्म हुआ हो । अब पर्वतीय नदी के प्रवाह सदृश पैर नहीं उठते हैं ।

# कारक-विधान

—डॉ. राम बरन पाठक



अपभ्रंश भाषा में दो ही कारक हैं—1. ऋजु या अविकारी कारक और 2. तिर्यक् या विकारी कारक। ऋजु या अविकारी कारक में कर्त्ता, कर्म और संबोधन की विभक्तियों का विधान है जिनमें शून्य विभक्ति का प्रचलन विशेष हो गया था। शेष विभक्तियां तिर्यक् या विकारी कारक का निर्माण करती हैं। इनमें कुछ शब्दों में तृतीया और सप्तमी तथा चतुर्थी, षष्ठी और पंचमी की विभक्तियां समान हैं और कुछ में सब विभक्तियां। 'हि' विभक्ति के बहुल प्रयोग ने इन्हें एकमेक कर दिया है।

## अविकारी कारक

कर्त्ता और कर्म एकवचन के विभक्तिरूप

पुल्लिग और नपुंसकलिग में कर्त्ता तथा कर्म कारक एकवचन का षिद्ध अपभ्रंश व्याकरण में साधारणतया समान रहता है। इस नियम तथा सिद्धान्त का प्रतिपादन पउमचरिउ काव्य में विद्यमान है।

## अकारान्त शब्द रूप में आनेवाले प्रत्यय

उ—इस प्रत्यय का प्रयोग अपभ्रंश भाषा में अमित हुआ है जिसकी पुष्टि हेमचन्द्र, क्रमदीश्वर, त्रिविक्रम, सिंहराज, तर्कवागीश और मार्कण्डेय ने की है। कालिदास से लेकर आज



प्राधुनिक काल में अथवा तक 'उ' प्रत्यय का प्रयोग प्राप्त है। स्वयंभुदेव के परवर्ती कवि पुष्पदन्त, धनपाल, घाहिल, जोइन्दु, रामसिंह, पं. दामोदर आदि अपने-अपने ग्रन्थों में इसकी प्रमुखता की स्वीकृति देने में प्रधान हैं। मध्य भारत में प्रस्तुत कारक चिह्न की प्रधानता है। प्राच्य पूर्वी अपभ्रंश में विशेषतः मगध क्षेत्र में 'उ' प्रत्यय अप्रचलित है। वैसे 'उ' रूप का प्रयोग समस्त अपभ्रंश क्षेत्र में प्रचलित है। सरहपाद के दोहाकोश में 41-44 और काण्डूपा के दोहाकोश में 28-57 प्रतिशत 'उ' प्रत्यय का प्रयोग सुलभ है। बारहवीं शताब्दी के संदेश-रासक ग्रन्थ में 'उ' प्रत्यय की अपेक्षाकृत 'ओ' का प्रयोग बहुल है। मैथिल कवि विद्यापति की 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' में अपेक्षाकृत 'ओ' प्रत्यय का बाहुल्य है। इन ग्रन्थों में यत्र-तत्र 'उ' प्रत्यय का प्रयोग दिखाई पड़ता है। उक्त उल्लेख से स्पष्ट है कि 'उ' कारक चिह्न का प्रयोग बहुल है। इसलिए अपभ्रंश को 'उकार बहुला' भाषा कहा जाता है। कालिदास के विक्रमोर्वशीय के अपभ्रंश अंश में उकारान्त की प्रधानता है। स्वयंभुदेव के सभी परवर्ती अपभ्रंश कवियों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है। हेमचन्द्र से पूर्व 'उ' अपभ्रंश भाषा का प्रमुख लक्षण था। स्वयंभुदेव कृत 'पउमचरिउ' में निरपवाद 'उ' का प्रयोग प्राप्य है। 'उ' प्रत्यय 'ओ' का लघुच्चरित रूप है। 'पउमचरिउ' काव्य में 'उ' का प्रयोग द्रष्टव्य है—

परमेसरु पच्छिम जिणवरिन्दु चलणगे चालिय-महिहरिन्दु ।

पाणुज्जु चउ-कल्लाण पिण्डु चउ कम्मडहणु कलिकाल-दण्डु ॥

ओ—यह रूप कर्ता एकवचन में बहुत कम प्रयुक्त है। 'ओ' का प्रयोग विक्रमोर्वशीय, पाहुडदोहा, भविसयत्तकहा, संदेशरासक, करकंडचरिउ तथा प्राकृत व्याकरण में पुल्लिगवत् स्पष्ट है। अछहमाण ने अपने काव्य में 'ओ' कारक का प्रयोग अधिक किया है जिन्हें डा. भायाणी ने प्राकृताभास की संज्ञा दी है। विद्यापति के कीर्तिलता व कीर्तिपताका में 'ओ' रूप का बाहुल्य है। पउमचरिउ में इसका प्रयोग अल्पमात्र है जिसको अपभ्रंश ने लघुच्चरितकर 'ओ' बना दिया। यह 'ओ' प्रायः 'उ' के रूप के लिखा जाता रहा है। फिर भी कुछ रूप यथावत् रह गये। स्वयंभुदेव ने कर्ता व कर्म एकवचन में 'ओ' का रूप पुल्लिगवत् प्रकट किया है। यथा—

एहु वे हओ हयस्स । चोहओ गओ गयस्स ॥

वाहियो रहो रहस्स । चाहओ एरो एरस्स ॥

अउ, अओ—परिवर्धित रूप भी 'पउमचरिउ' में मिलते हैं—

भोक्षिय-मालउ सिरेकुज्जरहो । उक्सोह पेन्ति अणणहो णरहो ॥

तं एणसुणेवि ओल्लण्डिय-माणउ । ल्हसिउ मियकु थक्कु जमराणउ ॥

को वि वाण-विणिमिण-वच्छओ । वाहिरन्तरुच्चरिय-पिच्छओ ॥

उपर्युक्त प्रत्ययों का प्रयोग पउमचरिउ में स्वयंभुदेव द्वारा कर्ता व कर्म के एकवचन पुल्लिग व नपुंसकलिग में है। 'अउ' और 'अओ' का रूप प्राय 'उ' और 'ओ' में निहित हो गया है।

आ—प्राप्य क्षेत्र के ग्रन्थों में जहां कि निविभक्तिक या अकारान्त रूप का बाहुल्य है, वहीं यत्र-तत्र आकारान्त रूप भी मिल जाता है। पउमचरिउ काव्य में छन्दानुरोध से 'शब्दान्त' 'आ' रूप को प्रयुक्त किया है। कवि ने बहुधा उक्त प्रत्यय एकवचन में प्रयुक्त किया है, वैसे अपभ्रंश वैयाकरण 'आ' विभक्ति चिह्नक का भी निर्देश करते हैं। यथा—

तर्हि ओसप्पिणि—काले गये कप्पयहच्छण्णा ।  
 अहो परमेसर कुल-यर-सारा । कोउहल्लु यह एउ भडारा ॥  
 छेमज्जलि-राणा अबुह अयाणा मेल्लि सकि जह सकि जह सकि तउ ॥  
 धीर-सरीर वीर तव-सूरा सव्वुहुं जीवहुं आसाऊरा ॥  
 इन्दिय पसवण पर-उक्यारा ते कर्हि एर पावन्ति भडारा ॥  
 बह देवहुं जे मज्जे संसूधा । तो कि कज्जे वाहण हूआ ॥  
 चन्दाइक्ख-राहु-अंगारा । अण्णहो अण्ण होन्ति कम्मारा ॥  
 णिव्वियार जिणवर-पडिब्बा इव । रह-विहि विण्णायिणियचडिया इव ॥

ए—प्रस्तुत वर्ग में एकारान्त रूप भी पूर्वी अपभ्रंश में सुलभ है—मअरन्दए <मकरन्दक, होमे <होमक, अब्भासे <अभ्यास (सरहपा) ।

### सम्बोधन

इस विभक्ति में भी कर्ता व कर्म की भांति प्रत्ययों का सम्बन्ध है। इसके लिए प्रायः निविभक्तिक प्रयोग आये हैं। किसी-किसी स्थल पर 'उ' अथवा 'आ' प्रत्यय स्वयंमुदेव ने अपनाया है—

जय एाह सव्व-देवाहिदेव । किय-एाग-नरिन्द-सुरिन्द-सेव ॥  
 परमेसर बुज्जउ बुट्ठु सलु । चन्डोवर णायें अतुल-वलु ॥  
 तं णिसुखेवि अम्पउ चविउ एव । हणुवन्तु मुएवि को जाइवेव ॥  
 ताय-ताय मिसि साहणे गम्पिणु स रामचन्डहो ॥  
 जइ मल्लउ बहिमुह माम महु । तो तिण्णि वि कण्णउ देहि वहु ॥  
 मवे मवे अम्हहुं देउज जिण गुण-सम्पति-भडारा ॥

बहुवचन-विभक्तियां—इस वर्ग में आ, उ, हो तथा शून्य (अ) प्रत्यय का प्रयोग मिलता है। यथा—

आ—एारा, चवकारा, मचा, जसवन्ता, सरन्ता आदि ।

हो

हो हो केण बिट्ठु परम्पउ ॥

नपुंसकलिग अकारान्त कर्ता व कर्म के बहुवचन में रूप पुल्लिग से भिन्न होता है ।

इसकी व्यवस्था अलग है जिसका रूप 'इ' है। यथा—णयणइ ।

संधि बत्तीस के नवें, दशवें तथा ग्यारहवें कड़वक में नपुंसकलिग का सुन्दर प्रयोग देखा जा सकता है।

## निर्विभक्तिक अथवा शून्य विभक्ति

शालोच्य विभक्ति में कोई-कोई शब्द अपने मूल रूप में ही प्रयुक्त होकर कर्ता व कर्म तथा सम्बोधन का पूर्णरूपेण कार्य करते हैं। कभी-कभी प्रत्ययविहीन शब्द भी वाक्य एवं अर्थ की समीचीनता में बाधक सिद्ध नहीं होते। उत्तर-पश्चिमी अपभ्रंश में निर्विभक्तिक प्रयोग अल्प हैं। पउमचरिउ में सर्वत्र अकारान्त के स्थान पर उकारान्त प्रयोग मिलता है। फिर भी गहन अध्ययन से अकारान्त शब्द शून्य-विभक्त्यन्त मिले हैं। प्राच्य अपभ्रंश में निर्विभक्तिक के रूप बहुत हैं। पउमचरिउ काव्य में कतिपय शब्द अश्लेषित हैं—

किह् वास्वर गिरिधर उच्चहन्दि । बन्धेवि मधरहृद समुचरन्ति ॥  
 पुरिय बबल सङ्ग किकलयसु । केहि मि घोसिउ चउविहुमङ्गसु ॥  
 सचमउ वि कुवेर अहिहाणे । अट्ठमु कलसु लहउ ईसाणें ॥  
 अण्ण कलस उच्चाइय अण्णेहि । लक्ख-कोटि-अक्खोहिणिगण्णेहि ॥

## 2. तिर्यक्या विकारी कारक और अधिकरण एकवचन के विभक्ति रूप

करण और अधिकरण अर्थ में समान प्रत्ययों का प्रयोग।

एण

पयाव-गवेसणेण, पेस-णेण, कन्नुअ-खणेण, अत्याण-णिरवन्धणेण, अवसोयणेण,  
 डोयणेण, पविहारणेण, मन्तणेण ।

वासु महा जसेणरेण अल्लसैण अक्खीदुअतिहुवणु ।

एणं एण का विधान मार्कण्डेय ने किया है। यथा—

सीहेणं विचहेणं जोहणो गहनवो । अमरन्धरेणं, संबरेणं ।

ए--सोएं, सन्धावारें

स्वयंभुदेव ने पउमचरिउ में अधिकरण एकवचन में ऐं, ए, हि, हों, ऐं, ए, उ, ए, इ प्रत्यय का प्रयोग किया है। किसी-किसी स्थल पर 'शून्य' प्रत्यय प्रयुक्त है। जबकि अपभ्रंश के अन्य ग्रन्थों में उपर्युक्त प्रत्यय के अतिरिक्त हि, अँ, अ, म्मि भी प्रयोग किया गया है। यथा—

ए—सीसे

ऐं—वर-पलके, पहु-पंगणऐं, अके, परे, अवराइऐं,

हिं=उत्तरसेडिडहि, दाहिणसेडिडहि, विट्ठहिं

एं=स-हृथें, थवन्ते, कण्डें, खगें

ऐं=लय-मण्डपें, खगें, सिरें

इ=सूलपाणि,

म्मि=लक्खणम्मि

## निर्विभक्तिक अथवा शून्य प्रयोग

पायाललङ्क

बहुवचन विभक्तिरूप

शालोच्य कारक में हि और हिं प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत का 'प' प्राकृत में 'ह' हो गया है। यही रूप अपभ्रंश में भी प्रचलित है।

एमिः> एमि> एहि । एहि> एहि विकास हुआ । दूसरा रूप (अ) अहि> अहि ।  
देखिए—

अजयरेहि, सिरि-णासेहि, उर-कर-चरण-कण्ण-णयणासेहि, करेहि, सहस-सहज-  
सरेहि, उभय-करेहि, सचहि, पायोरहि ।

एँ=करेँ

उ=उक्त्वन्तु

ई=वायरणपुराणई

हि=तुरगेहि, मत-मायगेहि, सिविया-जणेहि, पवर-विपाणेहि, वाहणहि

निविभक्तिक प्रयोग

वर करवाल-हृत्थ

### 3. संप्रदान, अपादान और संबंध एकवचन के विभक्ति रूप

अपादान

हे—वण-वणिमहे, सुह-जणिमहे, उज्जहे, दुग्गज्भहे

एण—जमेण

ए—हुआसे, काले, विणासे,

अपभ्रंश साहित्य में सम्बन्ध कारक एकवचन के चिह्न सु, हो, हु, स्स, ह तथा अ या  
शून्य है परन्तु स्वयंभू ने अपने काव्य पउमचरिउ में 'हो' और 'स्स' का प्रयोग किया है ।

जिणिन्दहो, घरणिन्दहो, गिरि-वेयड्डहो, राबणस्स ।

### संप्रदान, अपादान और संबंध के बहुवचन के विभक्ति रूप

हँ=वरंगणाहँ, धेणुवाहँ, एराहिवाहँ,

हँ=एन्दराहँ, सन्दणहँ, रायवराहँ, हयवराहँ, मण्डलाहँ, हलाहँ,

इस महाकाव्य में स्वयंभू ने सम्बन्ध कारक बहुवचन में हँ का प्रयोग तो किया ही है,  
इसके अतिरिक्त हि का भी प्रयोग सुलभ है ।

हँ=कन्वण रयणहँ, मि-तिहुअण-परमेसरहँ

हि=अमर-कुमारेहि, उत्तरदाहिण-संडिडहि

### स्त्रीलिंग अकारान्त या आकारान्त रूप

स्त्रीलिंग अकारान्त व आकारान्त कर्ता व कर्म एकवचन में शून्य विभक्ति प्रत्यय  
अथवा कभी-कभी (बहुत कम) 'उ' प्रत्यय प्रयुक्त हुआ है तथा बहुवचन में 'उ' एवं 'ओ' का  
प्रयोग प्राप्त है । उक्त 'उ' प्रत्यय के विषय में तर्कवागीश का मत स्पष्ट है, "स्त्रियां सुपो लुक्  
प्रकृतेश्च ह्रस्वः स्याद्वा न वा" अर्थात् स्त्रीलिंग में सु का लोप और प्रकृति को ह्रस्व विकल्प से  
होता है । तदन्तर इहान्यतोऽपिक्वचिद् उ प्रयोज्यो । 'राहीउ बालाउ कण्ठु' राहीउ बालाउ=  
राधाबाला । स्त्रीलिंग में प्रत्यय के विकल्प अल्प हैं । करण कारक एकवचन में ए (ह्रस्व रूप  
ह) बहुवचन में भी वही रूप, अपादान एवं सम्बन्ध कारक एकवचन में है, बहुवचन में हँ,

अधिकरण कारक एकवचन में हि, बहुवचन में हि, सम्बोधन कारक एकवचन व बहुवचन में शून्य विभक्ति का प्रयोग मिलता है, कहीं-कहीं बहुवचन में 'हो' का प्रयोग प्राप्त हो जाता है। कर्ता और कर्म एकवचन में शून्य विभक्ति का प्रयोग मिलता है यथा—

शून्य—अनंगकुसुम, चन्दलेह, गाढ़ा-लखणु,

तथा बहुवचन में 'उ' का यथा---

उ—कण्णउ

करण एकवचन में ऐं और बहुवचन में हि का प्रयोग स्वयंभू ने किया है यथा—

ऐं—महिलाऐं

हि—विज्जहि

तथा अपादान एकवचन में हे चिह्न का प्रयोग मिलता है—

हे—सुमितहे, सीयहे

और अधिकरण बहुवचन में हि का प्रयोग, यथा—

मन्दोदरि—सीयाएविहि

पउमचरिउ महाकाव्य में अपादान व सम्बन्ध कारक का बहुवचन तथा अधिकरण कारक का एकवचन स्त्रीलिंग अकारान्त व आकारान्त का प्रयोग शून्यवत है।

स्त्रीलिंग अकारान्त शब्द के लिए जो प्रत्यय पउमचरिउ में प्रयुक्त हैं वे ही प्रत्यय स्त्रीलिंग में इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, और ऊकारान्त में पाये जाते हैं।

इस प्रकार स्त्रीलिंग शब्दों में अविकारी और विकारी कारकों का विधान अधिक स्फुट और स्पष्ट है और शून्य एवं हि विभक्ति से समृद्ध आधुनिक भारतीय भाषाओं में कारक विधान का आधार अपभ्रंश भाषा की संरचना का ही विकसित रूप है।

# ‘पउमचरिउ’ पर आधारित संधि-विधान

—सुश्री प्रीति जैन



अपभ्रंश में संधि का स्वरूप सर्वथा नया है, उसकी संरचना नई है। आज तक इस पर विचार नहीं हुआ है। इसलिए आधुनिक भारतीय भाषाओं के व्याकरण में जहां कहीं भी संधि का परिच्छेद आता है वहां संस्कृत की नियमावलि उद्धृत करके उन भाषाओं में संस्कृत के शब्द ढूंढ कर उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर दिए जाते हैं। इनमें भाषा का मूलरूप पीछे छूट जाता है, आदत्त प्रधान हो जाता है और वही व्याकरण की परिसीमा में बांध दिया जाता है। इसलिए आधुनिक भारतीय भाषाओं में सही संधि-नियम न खोजे-शोधे गए हैं और न पढ़े-पढ़ाए गए हैं। यह सभी जानते हैं कि इन भाषाओं की जननी अपभ्रंश है और अपभ्रंश के व्याकरणों में भी इस ओर कोई अंगुलिनिर्देश नहीं है। इसलिए यह सोचा गया कि अपभ्रंश में निगमन-शैली से संधि रचना/संरचना के नियम देखे जाएँ जिससे उनका एक ढांचा तैयार हो सके। आदत्त शब्दों के कारण अपवादों का होना भी अपरिहार्य है अतः उनका निर्देश और उनसे न पड़नेवाले प्रभाव का संकेत दोनों ही नियम-निर्धारण में आवश्यक होते हैं। उन अपवादों की भी उस नियम की विस्तृति से सही-सही व्याख्या आवश्यक होती है। इस तरह के अध्ययन से अपभ्रंश के व्याकरण में एक नए अध्याय का आरंभ तो होगा ही, आधुनिक भारतीय भाषाओं की संधि-संरचना को खोजने-शोधने के लिये एक पीठिका भी तैयार होगी। इस संधि-रचना

को 'पउमचरिउ' के शब्द और रूप दोनों ही में निरखा-परखा गया है जिसका चंचुग्राही प्रयत्न विद्वानों के सामने है।

## शब्द संधि

### नियम-1

यदि अ (स्वर) के परे अ (स्वर) हो तो पूर्ववर्ती अ का लोप हो जाता है और परवर्ती अ अपने मूलरूप में सुरक्षित रहता है, अर्थात्—

अ + अ = अ, यथा—

कम्मट्ट	कम्म + अट्ट	अ + अ = अ 1.1.4
वामद्धु	वाम + अद्धु	अ + अ = अ 1.6.8
गयणगण	गयण + अङ्गण	अ + अ = अ 1.6.9
मोहन्धार	मोह + अन्धार	अ + अ = अ 1.16.9
वामकरङ्गुट्टउ	वामकर + अङ्गुट्टउ	अ + अ = अ 2.7.4
णीलञ्जण	णील + अञ्जण	अ + अ = अ 2.9.5
भरियञ्जलि	भरिय + अञ्जलि	अ + अ = अ 2.16.9
कुसुमञ्जलि	कुसुम + अञ्जलि	अ + अ = अ 2.17.5
भाणगिगि	भाण + अगिगि	अ + अ = अ 3.2.3
वत्तीसट्टारह	वत्तीस + अट्टारह	अ + अ = अ 2.17.7
गोट्टङ्गरो	गोट्ट + अङ्गरो	अ + अ = अ 4.1.2
अवुह्भन्तरे	अवुह + अन्भन्तरे	अ + अ = अ 4.1.1
सव्वङ्गु	सव्व + अङ्गु	अ + अ = अ 4.14.2
मउलञ्जलि	मउल + अञ्जलि	अ + अ = अ 3.7.8
महण्णव	मह + अण्णव	अ + अ = अ 5.16.3
पयइं	पय + अइं	अ + अ = अ 1.8.2
वयणइं	वयण + अइं	अ + अ = अ 1.8.1

### अपवाद

अ + अ = आ

नीचे दिये हुए शब्दों में अ + अ = आ संधि का स्वरूप दीख पड़ता है। इसका कारण यह है कि ये अपभ्रंश के मूल और प्रचुरप्रयुक्त शब्द नहीं हैं। उन्हें संस्कृत से ज्यों का त्यों आदत्त किया गया है केवल ध्वनिसादृश्य से अपभ्रंश की ध्वनि में परिवर्तित भर किया गया है। अतः इन उदाहरणों से पहला नियम खण्डित नहीं होता, यथा—

कल्पांमर	कप्पांमर	कप्प + अंमर	अ + अ = आ 2.1
पंचाणुन्नत	पंचाणुव्वय	पंच + अणुव्वय	अ + अ = आ 2.10
धर्माधर्म	धम्माहम्म	धम्म + अहम्म	अ + अ = आ 3.11

कोपानल	कोवाणल	कोव + अणल	अ + अ = आ 4.4
नराधिप	णाराहिउ	णर + अहिउ	अ + अ = आ 4.12
शून्यारण्य	सुणारण्यु	सुण्ण + अरण्यु	अ + अ = आ 5.4
लब्धावसर	लद्धावसरेहि	लद्ध + अवसरेहि	अ + अ = आ 5.12

**नियम—2**

पूर्व नियम की भाँति ही यदि अ स्वर के परे आ स्वर हो तो पूर्ववर्ती अ का लोप हो जाता है और परवर्ती आ अपने मूलरूप में सुरक्षित रहता है, अर्थात्—

अ + आ = आ, यथा—

परमायरिय	परम + आयरिय	अ + आ = आ
भवियायगा	भविय + आयगा	अ + आ = आ 1.1
परमागम	परम + आगम	अ + आ = आ 1.1
कमागय	कम + आगय	अ + आ = आ 1.2
पवाहावङ्गिय	पवाह + आवङ्गिय	अ + आ = आ 1.2
पुलिणालङ्किय	पुलिण + आलङ्किय	अ + आ = आ 1.2
गुणालङ्करिएं	गुण + आलङ्करिएं	अ + आ = आ 1.2
संसाराराएं	संसार + आराएं	अ + आ = आ 1.2
चुण्णासङ्गे	चुण्ण + आसङ्गे	अ + आ = आ 1.5
सव्वाहरणु	सव्व + आहरणु	अ + आ = आ 1.14
सुविणावलि	सुविण + आवलि	अ + आ = आ 1.14
धरांजयासिय	धरांजय + आसिय	अ + आ = आ 1.16
चन्दाणण	चन्द + आणण	अ + आ = आ 2.9
भोयासत्तउ	भोय + आसत्तउ	अ + आ = आ 2.9
पुण्णाउस	पुण्ण + आउस	अ + आ = आ 2.9
णट्टारम्भु	णट्ट + आरम्भु	अ + आ = आ 2.9
गोउराइं	गोउर + आइं	अ + आ = आ 1.7.7
मन्दिराइं	मन्दिर + आइं	अ + आ = आ 1.7.7
देवाविय	देव + आविय	अ + आ = आ 1.8.3

**नियम—3**

इसी प्रकार अ स्वर के परे इ स्वर हो तो पूर्ववर्ती अ का लोप हो जाता है और परवर्ती इ अपने मूलरूप में सुरक्षित रहता है, अर्थात्—

अ + इ = इ,	अ + ई = ई, यथा—	
महिहरिन्दु	महिहर + इन्दु	अ + इ = इ 1.7
जिणवविन्दु	जिणवर + इन्दु	अ + इ = इ 1.16



कुन्दिन्दु	कुन्द + इन्दु	अ + इ = इ	3.1
अहमिन्दु	अहम् + इन्दु	अ + इ = इ	3.4
विसहरिन्द	विसहर + इन्द	अ + इ = इ	3.4
णरिन्दु	णार + इन्दु	अ + इ = इ	3.4
ईसाणिन्दु	ईसाण + इन्दु	अ + इ = इ	3.5
पंचिन्दिय	पंच + इन्दिय	अ + इ = इ	3.2
कम्मिन्धणइं	कम्म + इन्धणइं	अ + इ = इ	3.3
चामरिन्द	चामर + इन्द	अ + इ = इ	3.3
सोहिल्लं	सोह + इल्लं	अ + इ = इ	मं.
दिठ्ठी	दिठ्ठी + ई	अ + ई = ई	मं.
वरिट्ठी	वरिट्ठी + ई	अ + ई = ई	1.14.9

#### अपवाद

अ + ई = ए, अ + ई = ए

इसके उदाहरण भी मूलतः संस्कृत के उदाहरण हैं जो सह-संधि अपभ्रंश की ध्वनियों से निर्गत हैं। इसमें संधि का कोई मूल आकार नहीं दीख पड़ता इसलिए ये उदाहरण भी अ + इ = इ, अ + ई = ई नियम को खण्डित नहीं करते।

भरतेश्वर	भरहेसरहो	भरह + ईसरहो	अ + ई = ए	3.13
परमेश्वर	परमेसरहो	परम + ईसरहो	अ + ई = ए	3.13
जिनेश्वर	जिणोसरेण	जिण + ईसरेण	अ + ई = ए	4.13
विमलेक्षु	विमलेक्खुक्व	विमल + ईक्खुक्व	अ + ई = ए	5.1

#### नियम—4

इसी पूर्वलिखित नियम के आधार पर अ स्वर के परे उ स्वर हो तो पूर्ववर्ती अ का लोप हो जाता है और परवर्ती उ अपने मौलिक स्वरूप में विद्यमान रहता है अर्थात्

अ + उ = उ, यथा—

केसरुघवियं	केसर + उघवियं	अ + उ = उ	1
कव्वुप्पलं	कव्व + उप्पलं	अ + उ = उ	1
सुरभवणुच्छलिय	सुरभवण + उच्छलिय	अ + उ = उ	1.1
णाणुग्गमहो	णाण + उग्गमहो	अ + उ = उ	1.1
तडुज्जल	तड + उज्जल	अ + उ = उ	1.2
हत्थुत्थलिय	हत्थ + उत्थलिय	अ + उ = उ	1.3
सव्वजणुच्छवेरा	सव्वजण + उच्छवेरा	अ + उ = उ	1.5
णाणुज्जलु	णाण + उज्जलु	अ + उ = उ	1.7
जम्मुप्पत्ति	जम्म + उप्पत्ति	अ + उ = उ	1.16
णीलुप्पल	णील + उप्पल	अ + उ = उ	2.2

एककुणसट्टि	एकक + उणसट्टि	अ + उ = उ	5.9
खणु	खण + उ	अ + उ = उ	मं.3
पट्टणु	पट्टण + उ	अ + उ = उ	1.4.9
रायंगिहू	रायंगिह + उ	अ + उ = उ	1.4.9
सेहरु	सेहर + उ	अ + उ = उ	1.4.9

**अपवाद**

**अ + उ = ओ**

इसके अन्तर्गत आनेवाले शब्द भी मूलरूप से संस्कृत के शब्द हैं जो केवल ध्वनि आकार में भिन्न दिखते हुए भी अभिन्न हैं, इसलिए संस्कृत भाषा की ध्वनियों का अनुगमन करते हैं। इस कारण अपभ्रंश भाषा की शब्दावली की संरचना इनसे भी अव्याख्येय है। ये केवल काव्यभाषा की प्राचीनता का निर्देश भर करते हैं, संरचना का नहीं।

चरणोपरि	चरणोवरि	चरण + उवरि	अ + उ = ओ	2.2
अष्टोत्तर	अट्टोत्तर	अट्ट + उत्तर	अ + उ = ओ	2.1
शिलोपरि	सिलोवरि	सिल + उवरि	अ + उ = ओ	2.3
मानुसोत्तर	माणुसोत्तर	माणुस + उत्तर	अ + उ = ओ	3.7
दानोज्झर	दाणोज्झरउ	दाण + उज्झरउ	अ + उ = ओ	3.6
शीलोपवास	सीलोववास	सील + उववास	अ + उ = ओ	3.1.1
षष्ठोपवास	छट्टोववासे	छट्ट + उववासे	अ + उ = ओ	5.3
अपरोप्पर	अवरोप्पर	अवर + उप्पर	अ + उ = ओ	6.7

**नियम—5**

इस नियम में अ/आ स्वर के परे ए होने पर ए ही शेष रह जाता है और पूर्ववर्ती स्वर अ/आ का लोप हो जाता है।

**अ + ए = ए, यथा**

एककेकए	एकक + एककए	अ + ए = ए	3.4
अवरेककहि	अवर + एककहि	अ + ए = ए	3.1.2
अण्णोक्कहि	अण्ण + एककहि	अ + ए = ए	3.1.2
एककमेक्क	एककम + एकक	अ + ए = ए	4.7
किलेसेक्कक्क	किलेस + एकक + एकक	अ + ए = ए	5.15
णवेप्पिणु	णव + एप्पिणु	अ + ए = ए	1.1
करेवि	कर + एवि	अ + ए = ए	1.8.1
आयरेवि	आयर + एवि	अ + ए = ए	1.8.1
कुम्में	कुम्म + एं	अ + ए = ए	1.10.2
समरे	समर + ए	अ + ए = ए	1.10.2

**आ + ए = ए, यथा—**

महएविहे	महा + एविहे	अ + ए = ए	6.1
---------	-------------	-----------	-----

## नियम—6

इस नियम का निर्देश यह है अ/आ पूर्ववर्ती स्वर के अनन्तर यदि ओ स्वर आए तो केवल ओ स्वर ही रह जाता है और संधि-प्रक्रिया में अ/आ लुप्त हो जाते हैं—

अ + ओ = ओ, यथा—

जलोह	जल + ओह	अ + ओ = ओ 1.2
किरणोह	किरण + ओह	अ + ओ = ओ 2.6
विसोसहि	विस + ओसहि	अ + ओ = ओ 97.4
जलोल्लिय	जल + ओल्लिय	अ + ओ = ओ 28.3

## नियम—7

जब स्वर की स्वर से अनुवर्तिता होती है तो पूर्व का स्वर लुप्त हो जाता है और उत्तर का शेष रह जाता है, यथा—

उ + उ = उ, यथा—

कप्पयरुच्छुणा	कप्पयरु + उच्छुणा	उ + उ = उ 1.11
---------------	-------------------	----------------

## नियम—8

नियम सं. 7 के सादृश्य पर अनुवर्तिता स्वरों की हो तो अन्तिम दीर्घस्वर शेष रह जाता है और पूर्व का लोप हो जाता है ।

आ + आ = आ, यथा—

रड्ढाबद्दु	रड्ढा + आबद्दु	आ + आ = आ 1.3
जालावलि	जाला + आवलि	आ + आ = आ 28.2.5

निष्कर्षतः अपभ्रंश भाषा की प्रकृति ह्रस्वीकरण की है । यह प्रकृति संधि-विधान और समास-विधान में भी दीख पड़ती है । यही अपभ्रंश के शब्द और रूपों की कहानी है । अपभ्रंश से निःसृत भाषाओं की भी यही प्रकृति है जिसे सामने लाने की आवश्यकता है, तभी उनकी सन्धि और समासों की व्यवस्था सही संदर्भ में संभव हो सकेगी ।

# स्वयंभू और पक्ष-विचार

—डॉ. छोटेलाल शर्मा



1.1 क्रिया के जिस रूप से व्यापार की विभिन्न स्थितियां, दशाएं या प्रक्रियाएं प्रति-भात होती हैं उसे 'पक्ष' कहते हैं। क्रिया माध्यम है और 'पक्ष' व्यापार की सूक्ष्म अवस्थाओं एवं कार्य-संपादन के विभिन्न भावों का प्रत्यायक-प्रदर्शक। इसलिए 'हॉकेट' 'पक्ष' को 'क्रिया की परिरेखा या समोच्च रेखा' कहता है।<sup>1</sup> 'पक्ष' शब्द अंग्रेजी शब्द 'एस्पेक्ट' का रूपान्तर है और 'एस्पेक्ट' रूसी शब्द 'विद' का<sup>2</sup>। अंग्रेजी के इस शब्द की पाश्चात्य भाषाव्याकरणों और विवेचनाओं में अनेक व्याख्याएं हैं। इसलिए इसके प्रयोग में विविधताजन्यभ्रंति का घटाटोप है। एक और रूप-रचना के छाए रहने के कारण 'प्रेजेंट सिस्टम', 'एग्रोरिस्ट सिस्टम' 'परफेक्टिव सिस्टम' आदि लकार-वर्गीकरण विद्यमान थे और इनके प्रभाव से 'ग्रीक' और 'अंग्रेजी' में लिखे 'हिटनी' के संस्कृत व्याकरण तक में 'इम्परफेक्टिवफॉर्म', 'एग्रोरिस्ट फॉर्म' आदि का प्रयोग हुआ है तथापि 'इम्परफेक्ट' के रूप वस्तुतः 'परफेक्टिव एस्पेक्ट' के हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी के लकार के नाम 'प्रेजेन्ट परफेक्ट', 'पास्टपरफेक्ट' यह भ्रंति उत्पन्न करते हैं कि यहां 'परफेक्टिव एस्पेक्ट' है, यद्यपि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। हिन्दी व्याकरण में 'पक्ष' पर कोई विचार नहीं है क्योंकि अंग्रेजी भाषा के अपने व्याकरणों में भी यह पृथक् संकल्पना नहीं थी और न ही संस्कृत व्याकरणों में।<sup>3</sup> प्राकृत और अपभ्रंश के व्याकरणों और विवेचनाओं में भी इस पर विचार नहीं है क्योंकि ये व्याकरण भी संस्कृत व्याकरण के अनुकरणों पर लिखे गए। प्राकृत ने ध्वनि ही बदली थी अपभ्रंश ने संरचना भी और अपने को देशी भी घोषित किया<sup>4</sup>, फिर भी अभाव बना ही रहा

क्योंकि देशी भाषाओं का भी यही भाग्य है। यह काल का उपांग ही बना रहा—'इससे अनेक अनिश्चय की अर्थ छवियाँ प्रस्तुत हैं, यहां तक कि आसन्न भविष्यत् भी....कृदन्त और क्रियापद के संयोग से 'काल' वैविध्य को प्रकट किया गया है। भूतकालिक कर्मवाच्यकृदन्त 'आसी' के साथ मिलकर पूर्ण भूत का भाव प्रकट करता है और 'सि' के साथ मिलकर पूर्ण वर्तमान का।'<sup>5</sup>

1.2 'पक्ष' एक अत्यन्त जटिल और उलझनभरी व्याकरणिक कोटि है। इसके लिए 'वृत्ति'<sup>6</sup>, 'दशा'<sup>7</sup>, और 'प्रकार'<sup>8</sup> आदि पर्यायों का प्रयोग प्रचलित है। यह 'काल' और 'वृत्ति' से प्रायः मिश्रित दीख पड़ता है, इसीलिए डॉ. ज.म. दीमशित्स ने 'पक्ष' को काल का आश्रित कहा है,<sup>9</sup> फिर भी 'काल' के साथ 'पक्ष' की उपस्थिति क्रिया को बहुत अधिक स्पष्टता तथा संबंधित समय में कार्य संपादन के सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने की सामर्थ्य प्रदान करती है। 'काल' क्रिया की रूपरचना को प्रभावित करता है और 'वृत्ति' तथा 'पक्ष' वाक्य संरचना को। आधुनिक आर्यभाषाओं को 'योजक' और 'रंजक' क्रियाओं की विशिष्टता प्राप्त होने के कारण 'पक्ष' की पहचान सरल है, फिर भी इनके परंपरागत व्याकरण इस बारे में सर्वथा मौन हैं। उन्होंने 'पक्ष' को विचार के योग्य भी नहीं समझा है। वे 'पक्ष' को 'काल' में ही निहित मानते हैं—'क्रिया के उस रूपान्तर को काल कहते हैं जिसमें क्रिया के व्यापार का समय तथा उसकी पूर्ण व अपूर्ण अवस्था का बोध होता है।' 'संस्कृत में भी 'काल' की निश्चित अभिव्यक्ति पर जोर नहीं दिया जाता था।'<sup>10</sup> प्राचीन, आर्य भाषाओं में कालभेद के लिए क्रिया का वास्तविक रूप था ही नहीं, वहां भी पूर्णत्व, अपूर्णत्व, समयनिष्ठ, अव्याहत, पुनरार्थक, उपक्रामक, सातत्य द्योतक, प्रगति द्योतक, समाप्ति द्योतक आदि विभिन्न क्रियारूपों द्वारा 'काल' के सूक्ष्म भेदों को प्रकट किया जाता था। इनके द्वारा ही धीरे-धीरे 'काल' प्रणाली का विकास हुआ जिसका प्राचीन आर्यभाषाओं में दर्शन होता है।<sup>11</sup> भारतीय भाषाओं में क्रियाओं के सम्पन्न होने के क्षण (भूत, वर्तमान और भविष्यत्) का महत्व नहीं था, आवश्यक यह था कि क्रिया की कल्पना उसकी प्रगति की दृष्टि से हुई है अथवा विकास की किसी निश्चित अवस्था की दृष्टि से, और क्या यह अवस्था आरंभिक काल की थी अथवा अंतिम काल की, या क्रिया केवल एक बार हुई या बार-बार, क्या उसकी समाप्ति हुई या उसका कुछ परिणाम हुआ या नहीं।<sup>12</sup>

1.3 'पक्ष' की पृथक् व्याकरणिक कोटि के रूप में संकल्पना और पहचान अभी अर्ध दशक से बनी है। इसके तात्विक विवेचन का आरंभ 'कामरी' की 'एस्पेक्ट' पुस्तक के प्रकाशन के साथ हुआ है, वैसे 'रूसी' प्रभृति 'रोमांस' भाषाओं में क्रिया के रूपान्तरण द्वारा पूर्णता-अपूर्णता आदि 'पक्ष' विभेदों को प्रदर्शित करने की पहल विद्यमान थी। आज भी इन भाषाओं में 'काल' की अपेक्षा 'पक्ष' की चेतना प्रधान है। 'स्लाव' भाषाओं में पाए जानेवाले 'पक्ष' संबंधी विभिन्न प्रकार्यों की चर्चा करते हुए जर्मन विद्वानों ने विशेषरूप से इस बात पर बल दिया है कि 'पक्ष' के दो निश्चित आयाम हैं। पहले आयाम का संबंध 'पक्ष' के वस्तुपरक संबंध से है जिसे क्रियार्थ का समय संबंधी प्रक्रिया विधि (आक्शन सार्ट) कहा जाता है। दूसरे आयाम का संबंध 'पक्ष' के भावपरक संदर्भ से है। 'पक्ष' की वास्तविक स्थिति ये भावपरक संदर्भ तक ही मानते हैं। वास्तविक 'पक्ष' का संबंध उस समय की अभिव्यक्ति के साथ

रहता है जिसका संदर्भ प्रोक्ति है। इसमें समय की सूचना मात्र क्रिया के अर्थ पर निर्भर नहीं करती, बल्कि पूरे वाक्यार्थ का अपना आधार बनाती है। क्रियार्थ की प्रक्रिया में निहित समय और प्रोक्ति के विषय में निहित समय एक नहीं होता और वास्तविकता तो यह है कि इस दो प्रकार के समय का परस्पर संबंध ही सही अर्थों में 'पक्ष' की प्रकृति को निर्धारित करता है। अतः 'पक्ष' के दो युग्म हैं—1. पूर्णकालिक बनाम अपूर्णकालिक तथा 2. पूर्ण बनाम अपूर्ण। 'पूर्णकालिक पक्ष' में विधेयवाची प्रक्रिया का समय अनिवार्यतः प्रोक्ति के विषय के दायरे के भीतर होता है और 'अपूर्णकालिक पक्ष' में विषय का समय विधेयवाची प्रक्रिया के समय के दायरे के भीतर। 'पूर्ण पक्ष' में पूरी प्रक्रिया वक्ता के दृष्टिकोण में रहती है और क्रिया अंतिम परिणति तक पहुँच चुकती है इसलिए आगे और होने की संभावना समाप्त हो जाती है, 'अपूर्णपक्ष' में काम शेष होने का भाव बना रहता है।<sup>13</sup> कुछ विद्वान् 'पूर्णकालिक', 'अपूर्णकालिक' तथा 'पूर्ण', 'अपूर्ण' में भेद न कर इन्हें 'व्यापार' 'फल' से समीकृत करते हैं।<sup>14</sup> लेकिन बात बारीकी में नहीं उतर पाती।

1.4 आर्य भाषाओं में ही नहीं विश्व भाषाओं के व्याकरणों में भी 'पक्ष' का विवेचन बहुत स्पष्ट नहीं है, यद्यपि यह 'काल' की अपेक्षा अधिक प्राचीन, मूलभूत एवं व्यापक रहा है। 'संस्कृत' आर्य परिवार की सर्वाधिक प्राचीन भाषा है। उसके व्याकरणों में न 'पक्ष' या 'तात्पर्याय' शब्द ही है और न अंग्रेजी के 'एस्पेक्ट' अर्थ में विवेचन ही, हाँ 'धात्वर्थनिर्णय' में प्रकारान्तर से संकेत अवश्य है। 'भर्तृहरि' ने क्रिया में क्रियातत्त्व के अस्तित्व के लिए क्रमिकता का निर्देश किया है—

यावत्सिद्धमसिद्धम् वा साध्यत्वेनाभिधीयते ।

आश्रितक्रमरूपत्वात् तत् क्रियेत्यभिधीयते ।<sup>15</sup>

इसके छह भाव विकार हैं—आविर्भाव, तिरोभाव, जन्म, नाश आदि। यही बात भर्तृहरि ने भी अपने वाक्यपदीय (1.3) में कही है—

अध्याहितकलां यस्य कालशक्तिमुपाश्रितः ।

जन्मादयो विकाराः षड्भावभेदस्ययोनयः ॥

आविर्भाव तिरोभाव जन्मनाशोत्थापरे ।

षट्सु भावविकारेषु कल्पितोव्यावहारिको ।<sup>16</sup>

यास्क ने व्यापार की छह अवस्थाओं—जन्म, नाश, वृद्धि, क्षय, परिवर्तन और स्थिति का निर्देश किया है जो 'पक्ष' के निकट हैं—

षडभाव विकाराः भवन्तीति वाढ्यायणः ।

जायतेऽस्ति विपरिणमतो वर्धतेऽपक्षीयते विनश्यतीति ।<sup>17</sup>

ये क्रम से उत्पन्न होनेवाले अनेक अवयवीभूत व्यापार ही हैं जिन्हें संकल्पनात्मक अखंडबुद्धि से समग्ररूप में ग्रहण करना आवश्यक है।

गुणाभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्मनाम् ।

बुद्ध्या प्रकल्पिताभेदः क्रियेतिव्यपदिश्यते ।<sup>18</sup>

‘पतंजलि’ द्वारा ‘अभ्यावृत्ति’ शीर्षक के अन्तर्गत की गई चर्चाएं वैसे ‘एस्पेक्ट’ तो नहीं कही जा सकतीं, लेकिन बहुत दूर भी नहीं हैं। ‘अभिमुखीवृत्ति’ ही ‘अभ्यावृत्ति’ है<sup>19</sup> जो भिन्नकाल की क्रियाओं में होती है—‘अभ्यावृत्तिर्हिभिन्नकालानां क्रियाणां भवति।’<sup>20</sup> ‘क्रियाभ्यावृत्ति’ की तरह नित्य और ‘आभीक्ष्ण्य’ भी क्रिया में संबद्ध हैं। बार-बार क्रिया की प्रवृत्ति ‘आभीक्ष्ण्य’ है और जिस क्रिया को कर्ता प्रधानरूप से लगातार करता है, उसे ‘नित्य’ कहते हैं। इनमें अन्तर भी है—‘आभीक्ष्ण्य’ में क्रिया की आवृत्ति प्रतीत होती है और ‘नित्य’ में क्रिया का अविच्छेद जान पड़ता है। इसी प्रकार ‘क्रिया समभिहार’ शब्द भी क्रिया के बार-बार होने अथवा उसके तीव्र स्वरूप को व्यक्त करता है—‘पौनः पुन्यभृशार्थो वा क्रियासमभिहारः।’<sup>21</sup> इस तरह ‘धात्वर्थनिर्णय’ में क्रमिक व्यापारयुक्त ‘साध्यावस्था’ भी निहित है और ‘फल’ रूप ‘सिद्धावस्था’ भी क्योंकि प्रत्येक क्रिया में ‘व्यापार’ के साथ ‘फल’ का योग होता है। फल और व्यापार के बीच जन्य-जनक संबंध है—फल जन्य है और व्यापार जनक। इस प्रकार अवयवभूत गौण क्रियाओं की क्रमिक अवस्था से जो व्यापार होता है उससे फल की निष्पत्ति होती है। इस तरह यहां ‘पक्ष’ का वैज्ञानिक विश्लेषण अछूता रह गया है और ‘काल’, ‘वृत्ति’ तथा ‘पक्ष’ तीनों को लकार से अभिहित कर दिया गया है।

1.5 ‘काल’, ‘पक्ष’ और ‘वृत्ति’ भिन्न-भिन्न व्याकरणिक कोटियाँ हैं। ‘काल’ और ‘पक्ष’ का व्यापार के भौतिक अंग से संबंध है। इनकी सत्ता भी भाषामात्र में निहित होती है। भाषा के बाहर का काल समय कहलाता है जो अनादि, अनन्त और अविभाज्य भी है और अविच्छिन्न रूप से निरंतर एक दिशा में गतिमान भी। काम चलाने के लिए इसको विभाजित कर लिया जाता है—क्षण इसकी सबसे छोटी इकाई है ज्यामितीय बिन्दु के सदृश जो सर्वथा आयामविहीन है। इसके तीन संघटक हैं—कोई एक संदर्भ बिन्दु या निर्देशांक, अवधि की कोई न कोई धारणा और आगे-पीछे का क्रम। समाज की दृष्टि से सार्वजनीन निर्देशांक ही महत्वपूर्ण है, इसलिए सामान्य और नियत घटना ईस्वी, विक्रमीय, संवत्, शती जैसे आयामों में की जाती है, साल, महीना, दिन, घंटा आदि अवधि के अवयव हैं। लेकिन भाषा में प्रोक्ति और प्रकथन में एकजनीन निर्देशांक और अवधि के दर्शन होते हैं क्योंकि वह वक्ताकेन्द्रित होता है। सामान्यतः जगत् का प्रत्येक कार्य व्यापार इस लौकिक समय के धरातल के किसी न किसी बिन्दु पर ही घटित होता है। जब यह व्यापार भाषा में समय-संदर्भ के प्रस्तुत होता है तो सामान्यतः प्रोक्ति का समय ही निर्देशांक का काम करता है जो उसे भूत, वर्तमान या भविष्यत् जैसे कृत्रिम खंडों में बांट देता है। यह कृत्रिम इसलिए कहा जाता है कि प्रवाह का कोई बिन्दु रोककर स्थिर नहीं किया जा सकता। यह संदर्भ बिन्दु ही उक्ति का शून्य बिन्दु कहलाता है<sup>22</sup> और इसके परिप्रेक्ष्य में विभाजित कालखंड व्याकरणिक काल।

1.6 ‘काल’ समय नहीं है, समयबोध है—वक्तानिष्ठ, वक्ता का मनोभाषिक जगत्। यह लौकिक घटना संदर्भ की तरह निरपेक्ष और स्थिर नहीं है बल्कि गतिमान और सापेक्ष। अतः समयवाची क्रियाविशेषणों और परसर्गों का मूल्य भी सापेक्षिक है क्योंकि ये उक्ति समय पर नहीं, उसमें वर्णित या निहित किसी अन्य समय-बिन्दु पर आश्रित रहते हैं इस प्रकार ‘काल’ कार्य व्यापार के समय को किसी अन्य संदर्भ समय से जोड़ देता है जो उक्ति समय भी

हो सकता है या उसमें निहित कोई अन्य समय बिन्दु भी। इस तरह काल घटना-समय और मंदर्भ समय के बीच विद्यमान संबंध का व्यतिकरण या व्याकरणीकरण है। वक्ता कभी एक समय बिन्दु से बंधा नहीं होता, वह तो एक समयावधि में फैला होता है, और यह समयावधि कितनी छोटी बड़ी है, यह भी वक्ता पर ही निर्भर होता है, इसलिए समय बिन्दु का प्रयोग न होकर समय विस्तृति का प्रयोग होता है। इसी व्यक्ति निष्ठता के कारण 'काल' को डाइक्टिक कहा गया है। वक्ता वर्तमान में रहते हुए भी वर्तमान से बंधता नहीं है, वह अतीत की घटना का 'स्मरण' करता है और भविष्य की घटना की 'प्रत्याशा'। यह 'स्मरण' और 'प्रत्याशा' की शक्ति उसे समय के बंधन से थोड़ा बहुत मुक्त कर देती है। उसकी 'कल्पना' और 'तर्कणाशक्ति' उसके निर्देशांक के वर्तमान से हटाकर भूत या भविष्य में स्थापित कर सकती है। इस प्रकार निर्देशांक के आगे-पीछे खिसकने से और 'स्मरण' तथा 'प्रत्याशा' के संयोग से अनेक 'काल' स्थितियां बन जाती हैं।

1.7 'काल' संरचना के स्तर पर क्रिया कोटि है और अर्थ संरचना के स्तर पर वाक्यात्मक कोटि क्योंकि यह वाक्य के अन्य समय सूचक तत्वों से प्रभावित प्रतिबंधित होता है। कभी-कभी 'पक्ष' तथा 'वृत्ति' में भी 'काल' का अप्रत्यक्ष बोध निहित रहता है। यह क्रिया पद बंध के भीतर भी सर्वथा पृथक् इकाई नहीं है। भाषा में कोई भी ऐसा 'काल', 'वृत्ति', या 'पक्ष' नहीं है जिसका आर्थी क्षेत्र केवल वहीं तक सीमित हो जहां तक उसके व्याकरणिक नाम से व्यक्त-संकेतित होता है। 'काल' का समय विभाजन अन्ततः मनोवैज्ञानिक है और मूल्य-मापेक्षक। 'पक्ष' तथा 'काल' के आर्थी क्षेत्र भी इतने अन्तर्मिश्रित हैं कि प्रायः व्याकरणों में इन दोनों के क्रिया रूपों को संयुक्त रूप से प्रस्तुत करने की परंपरा रही है। इनके बीच कई ऐसे महत्वपूर्ण सह प्रयोगात्मक संबंध हैं जो अन्यथा स्पष्ट नहीं हो सकते।<sup>23</sup>

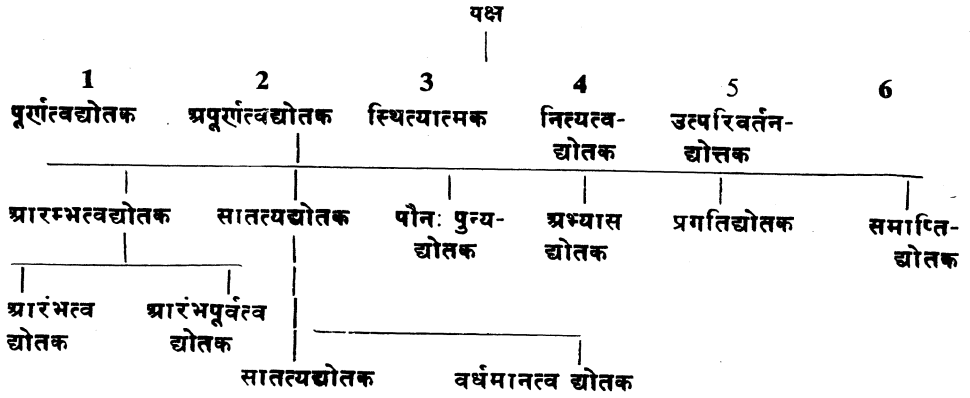
1.8 यह बात अब स्पष्ट है कि क्रिया व्यापार का एक बाहरी काल होता है और दूसरा भीतरी जिमका बाहरी या लौकिक धरातल की नापजोख से कोई संबंध नहीं होता है क्योंकि इसका फैलाव कार्यारंभ से कार्यान्त तक रहता है। असल में कार्य-व्यापार के इस आंतरिक क्षेत्र का बोध ही 'पक्ष' है जो केवल भाषा में ही संभव है। यह आंतरिक काल बोध इतना स्वतंत्र भी है कि जो न लौकिक काल से जुड़ा है, न उक्ति के शून्य बिन्दु से और न काल खंड से। यह केवल कार्य-व्यापार की पूर्णता-अपूर्णता की किसी अवस्था का बोध कराता है। यह अलग बात है कि इस पूर्णता-अपूर्णता की अवस्था का बोध मानसिक रूप से भूत या वर्तमान के साथ मिश्रित कर दिया जाता है और जो बाहरी संरचना में वांछित काल-चिह्नक के साथ प्रकट होता हो, फिर भी यह कोई अनिवार्यता नहीं है। यह काल-चिह्नक बिना भी व्यक्त हो सकता है। इनमें भूतकालिक रूप पहले से ही विवादास्पद रहे हैं। डॉ. रवीन्द्र श्रीवास्तव इसे 'काल' निरपेक्ष मानते हैं और कामताप्रसाद गुरु तथा अशोक केलकर इसे कालयुक्त क्रिया और सामान्यभूत के नाम से अभिहित करते हैं।<sup>24</sup>

1.9 कामरी ने 'पक्ष' को कार्य-व्यापार के आंतरिक 'काल' क्षेत्र को देखने की विभिन्न दृष्टियां कहा है।<sup>25</sup> इस प्रकार 'पक्ष' के अन्तर्गत केवल वह समय-विस्तार आता है जो व्यापार या घटना के आरंभ से अंत तक फैला रहता है और जो केवल आंतरिक क्षेत्र है।



इसमें व्यापार या घटना के लौकिक जगत् में वास्तविक रूप से घटित होने का भाव अन्तर्निहित रहता है, संभावित या संकल्पित व्यापार से इसका कोई संबंध नहीं है। इस तरह पक्ष का बोध मूलतः केवल उन्हीं कार्य-व्यापारों के संबंध में संगत है जो लौकिक धरातल पर घटित हो रहे हैं अथवा हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त जो कार्य-व्यापार लौकिक जगत् में घटित नहीं हुए हैं और जो वक्ता के मस्तिष्क में ही इच्छा, अभिवृत्ति, संभावना आदि के रूप में निहित हैं, उनका संबंध 'वृत्ति' से होता है, 'पक्ष' के क्षेत्र में वे नहीं आते। इस तरह 'पक्ष' कार्य-व्यापार की भौतिक अवस्था है और 'वृत्ति' मनोवैज्ञानिक। यही कारण है कि ट्रोवेल 'वृत्ति' को कार्य-व्यापार का मनोवैज्ञानिक 'पक्ष' कहते हैं, 'वृत्ति' कार्य-व्यापार की उस अवस्था या रीति को व्यक्त करती है जिसे वक्ता मानसिक स्तर पर अपनी चेतना तथा दृष्टिकोण से देखता है। उसकी यह दृष्टि इच्छा, कल्पना, संकल्प या अनुमान आदि से प्रेरित हो सकती है। इस प्रकार 'वृत्ति' से कार्य-व्यापार के प्रति वक्ता की अभिवृत्ति या कर्ता और कार्य-व्यापार के संबंध में उसके दृष्टिकोण का बोध होता है। अतः 'पक्ष' और 'वृत्ति' के भिन्न आयाम हैं।

2.0 आधुनिक भाषाविद् 'पक्ष' की घटनापरक व्याख्या से ही संतुष्ट नहीं है, वे उसकी विकासात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार 'पक्ष' अब केवल किसी व्यापार या घटना के ही संदर्भ में नहीं देखा-समझा जाता है।<sup>26</sup> इससे व्यापार की वास्तविक कालावस्था-आंतरिक कालक्षेत्र के अलावा, व्यापार से एक दम पूर्व या बाद की वे कालावस्थाएं भी शामिल हैं जो घटना या व्यापार के 'पक्ष' बोध को प्रवाहित करती हैं। यहां क्रिया-व्यापार की परिधि आंतरिक 'काल' क्षेत्र से कुछ बाहर तक आ जाती है, और 'पक्ष' के तीन आयाम हो जाते हैं—पूर्ववर्ती, समवर्ती और परवर्ती। इससे अलग 'पक्ष बोध' का एक अन्य आयाम भी है जो 'पक्ष' के आंतरिक समय-विन्यास का निर्माण करता है। इसका बाह्य संदर्भ-समय या लौकिक समय से कोई संबंध नहीं है, यह तो 'पक्ष' बोध में निहित व्यापार के आंतरिक समय का विन्यास या बुनावट है जिससे यह बोध होता है कि व्यापार क्षणपरक है या विस्तारपरक, एक बार घटित होता है, या बार-बार अर्थात् एकल घटना है या आवृत्तिपरक, प्रक्रियांत अथवा अवस्थान्त, स्थित्यात्मक है या प्रक्रियात्मक, उपलब्धि है या कार्यसिद्धि। ये सभी 'पक्ष' के लक्षण हैं जो 'पक्ष' को गहनता और विशिष्टता प्रदान करते हैं। 'पक्षबोध' का यह आयाम रेखीय न होकर उत्तराधर क्रमिक है। कुछ क्रिया विशेषण वाक्य के क्रियारूपों द्वारा व व्यक्त 'पक्ष' बोध को परिमाणित या परिसीमित करते हैं और प्रायः समधर्मी 'पक्षों' के साथ सहप्रयुक्त होते हैं। ये क्रिया विशेषक विस्तार या अवधि सूचक होने के कारण परिमाणक कहे जाते हैं और रेखीय होते हैं। इनके विपरीत क्षणपरक क्रियाओं के साथ निश्चित समय बिन्दु या क्षण को सूचित करनेवाले क्रिया विशेषण प्रयुक्त होते हैं। ये 'पक्ष' परिमाणक क्षणपरक क्रिया विशेषण कहलाते हैं। आवृत्तिपरक व्यापार को सूचित करनेवाले क्रिया विशेषणों का प्रयोग अभ्यास के साथ रहता है। कुछ व्यापार ही ऐसे हैं जिनमें प्रकृति से ही आवृत्ति भाव निहित रहता है। कभी-कभी कालचिह्नक योजक क्रियाओं के प्रयोग से भी 'पक्ष' के मूल्यों में सूक्ष्म अन्तर आ जाता है। अतः पक्ष के भेदोपभेदों को नीचे के आरेख से प्रकट किया जा सकता है।<sup>27</sup>



2.1 पूर्णत्व बोधक पक्ष—इसमें व्यापार समग्ररूप से पूर्ण होता है और घटनारूप में देखा जाता है जो प्रकरण अथवा संदर्भाश्रित रहता है। इसमें 'रंजक क्रिया' की वर्णिका कार्य व्यापार की पूर्णता को एक निरपेक्ष आयाम प्रदान करना है जो आंशिक पक्षात्मक लक्षणों से युक्त होने के कारण 'नियमित चिह्नक वर्ग' में नहीं आती। इसका मुख्य क्रियाओं से सह प्रयोगात्मक संबंध है। यह क्रिया के कोशीय अर्थ को तो प्रभावित करती है, लेकिन व्याकरणिक अर्थ में नहीं। स्वयंभू ने 'आसी' और 'सि' रंजक क्रिया का चिह्नक रूप में अधिक प्रयोग किया है—

### 2.10 भूतकालिक कृदन्त + रंजक क्रिया 'आसी'

1. केक्कहे सच्चु जं दिण्ण आसि, ..... ।<sup>28</sup>
2. कहिउ आसि महु परम जिणिन्दें ।<sup>29</sup>
3. पेसिय वेवि आसि देसन्तर ।<sup>30</sup>
4. जइवितुज्भु इमु मंडलु, बहुचिन्तिय फलु, आसि समप्पिउ वप्पें ।<sup>31</sup>
5. रोमित्तिर्यहिं आसि जं वुत्तउ ।<sup>32</sup>
6. इहु अट्ठावउ होन्तु ण वि, तावट्ठइ आसि माएँ गिलिउ ।<sup>33</sup>
7. जाओ सि आसि कासी विसएँ ।<sup>34</sup>
8. कहिओ सि आसि जो चररोहि ।<sup>35</sup>
9. जासि आसि हउं सरण पयट्ठउ ।<sup>36</sup>
10. जं लइउ आसि पुण्णोहिं विणु..... ।<sup>37</sup>
11. णिसि णिसियरि एँ आसि जं गिलियउ..... ।<sup>38</sup>
12. एउ एं जाणहुं आसि किउ अम्हहिं को अवराहो ।<sup>39</sup>

### 2.11 भूतकालिक कृदन्त + रंजक क्रिया 'सि'—

1. णिम्मन्तिओ सि इन्देणदेव ।<sup>40</sup>
2. लाइ तुज्भु जुज्भु एत्तडउकाल, दुक्का सि सीहदन्तन्तरालु ।<sup>41</sup>
3. सो लक्खिओ सि सइं लोयरोहिं ।<sup>42</sup>

**2.2 अपूर्णत्व बोधक पक्ष**—यह व्यापार के स्वभावतः पूर्ण होने की प्रक्रिया है जिसकी परिणति मुख्यतः सहायक 'पद चिह्नक' रचना के द्वारा होती है। यह किसी न किसी रूप में मूल 'पक्ष' प्रत्ययों के आशय को गुणात्मक रूप में प्रभावित करती है। इससे कार्य व्यापार की पूर्णता या अपूर्णता से सम्बद्ध किसी विशिष्ट 'पक्ष' का उद्घाटन भी होता है। 'वृत्ति' सूचक रचनाएं प्रायः 'पक्ष' निरपेक्ष होती हैं और 'पक्ष सापेक्ष' रचनाएं 'काल' निरपेक्ष। केलान ने सामान्य अवस्था को ही काल निरपेक्ष रचना माना है और उसे फिर पूर्ण-अपूर्ण क्रिया से जोड़ा है। उसके अनुसार सामान्य अपूर्ण क्रिया 'पक्ष' वह क्रिया-रूप है जो 'काल' निरपेक्ष है और क्रिया 'पक्ष' के अनुसार अपूर्ण। इसके अनेक प्रकार बताए जाते हैं जिनका विवरण नीचे दिया गया है।

**2.2.10 आरंभत्वद्योतक पक्ष**—इसके द्योतन में स्वयंभू ने प्रमुखतः 'लग्' रंजक क्रिया का प्रयोग किया है, कुछ स्थल संदर्भाश्रित भी हैं जिनमें क्रिया का क्रमिक अन्वय और वर्तमानकालिक कृदन्त की पुनरुक्ति प्रमुख है—

**2.2.11 धातु + क्रियार्थक प्रत्यय + रंजक क्रिया √ लग्—**

1. ....णासेवि सलिल पिएवएँ लग्गा ।<sup>43</sup>
2. ....चिन्तेवएँ लग्गु विसण्ण मणु ।<sup>44</sup>
3. मउडेण मउडु तुट्टे वि लग्गु ..... ।<sup>45</sup>
4. दददुर रडेवि लग्गं सज्जण ।<sup>46</sup>
5. वेतालएँ महि कंपराहेँ लग्ग ।<sup>47</sup>
6. मगहाहिउ पुणु वेदणहं लग्गु ।<sup>48</sup>

**2.2.12 धातु + वर्तमान तिङ्तरूप + रंजक क्रिया √ लग्**

1. अवरोप्परु मुहइँ णिएहं लग्ग ।<sup>49</sup>
2. ....लग्ग वियारेहिं दुण्णयसामिणि ।<sup>50</sup>

**2.2.13 धातु + इज्ज + वर्तमान तिङ्तरूप + रंजक क्रिया √ लग्**

1. सो विहि छन्देण सामण्णहि मि तुलिज्जइ लग्गउ ।<sup>51</sup>

**2.2.14 वर्तमानकालिक कृदन्तीय क्रमिकता एवं पुनरुक्ति—**

1. छिज्जन्तमहग्गयगरु अगत्त, णिवडन्त समुद्धय धवल छत्तु ।<sup>52</sup>
2. तणुतावइ लावइ पेम्म जरु, आयल्लइ सहइँ कुसुमसरु ।  
विधंति काम उक्कोवणइँ, रोवइ उज्जंगल लोयणइँ ।<sup>53</sup>

**2.2.2 आरंभपूर्वत्व बोधक पक्ष**—आरंभ से पूर्व की स्थिति में उक्ति के शून्य बिन्दु तथा कार्यारंभ बिन्दु के बीच के अन्तर को क्षीण करने या न करने का वक्ता का मानसिक प्रयास रहता है जिसे मानसिक घटना या वृत्ति के रूप में नहीं बल्कि कार्यारंभ की पूर्व सूचना या कार्यारंभ के एकदम पूर्व के व्यापार के रूप में लिया जा सकता है इसमें कार्यारंभ की तात्कालिकता का बोध निहित रहता है।

**2.2.20 धातु + कियार्थक प्रत्यय—**

1. एां मुच्छएँ किउ सहियत्तणउ, जं रक्खिउ जीवुगमणमणउ ।<sup>54</sup>
2. अज्ज वि ममरेहिव कमल-सरे । अच्छेवउ वरिस विराड घरे ।<sup>54ए</sup>
3. आयइं सब्बइं वचेवाइं, इंदियइं पंच खंचेवाइं ।<sup>54बी</sup>

**2.2.21 क्रियार्थक रूप + कर्तृत्व प्रत्यय—**

1. सामिय पसाय-सय-रिण-मणाहं, वन्दियजण-अणिवरिय-धणाहं ।<sup>55</sup>
2. तुहं दीसइ दणु माहप्प चप्पु ।<sup>56</sup>
3. हरि धुरे देप्पिणुघएँ विजउजणहोँ पेक्खन्तहोँ ।  
णिग्गउ इन्दइ एां वंधणारु हणुवन्तहोँ ।<sup>57</sup>

**2.2.22 पक्षपरिमाणक जाम-ताम + क्रियाभ्यास—**

1. लेइ एा लेइ जाम मरु णन्दणु, ताम पधाइउ वरणु स-सन्दणु ।<sup>58</sup>
2. करेँ धणुरुह लेइ एा लेइ जाम, सकलत्तउ लक्खणु दिट्ठ ताम ।<sup>59</sup>
3. किरजाम भिडन्ति भिडन्ति एां वि ताव णिवारिय वारएँहि ।<sup>60</sup>
4. भिडट्ट ण भिडइ जाम्ब णल-णील एारवराहँ, ताम्ब विहीसएा रहु दिण्णअंतराले ।<sup>61</sup>

**2.2.23 पक्ष परिमाणक जाम-ताम + तात्कालिक व्यापारसूचक मूल क्रिया—**

1. एव भग्गेवि लेइ किरजावहिं, लोणुउ जेम विलेविय तावहिं ।<sup>62</sup>
2. एत्तडिय परोप्परु बोल्लजाम, चित्तंगुस-सन्दणु आउताव ।<sup>63</sup>
3. किर अवरु चाउ करेँ चडइ जाम्ब, सयखंड-खंडुरह कियउ ताम्ब ।<sup>64</sup>
4. उप्पएँ विजाम, किरधरइ पुरन्दरु पत्तुताम ।<sup>65</sup>
5. हणुवन्तेँ महोअरु सिडिउजाम, सोजम्बुमालि सम्पत्तु ताम्ब ।<sup>66</sup>
6. घणु सब्बहोँ लक्खण विरहियेह, लइउलइउ हत्थहोँ पडइ ।<sup>67</sup>

**2.2.24 कारण-कार्य विपर्यय—**

1. मणि रोसु पवट्ठिउ वल्लहहोँ, किरदेइ दिट्ठतरु पल्लवहो ।<sup>68</sup>

सातत्य बोधक पक्ष—सातत्य बोधक 'पक्ष' से कार्य-व्यापार के उक्ति के शून्य बिन्दु या किसी संदर्भ समय में जारी रहने की अस्थिर अवस्था का ज्ञान होता है। इसमें अवधिपरक क्रिया विशेषणों का प्रयोग संभव है। स्वयंभू ने इस प्रकार के व्यापार से संबंधित अनेक मंगिमात्रों को गूथा-पिरोया है—

**2.3.0 वर्तमानकालिक कृदन्तरंजक क्रिया—**

1. णिय लीलएँ सीया-सुरवइ, सइ अच्छरहिं रमन्तु थिय ।<sup>69</sup>
2. जे विरमन्ता आसि लक्षण रामहु संकेवि ।  
एारवइ सुरयासत्त आवण थिय मुहु ढंकेवि ।<sup>70</sup>

3. कसु केरउ एवड्डु दुहु, वणो अच्छहो जेण रूअन्तियउ ।<sup>71</sup>
4. पुणु विपलाउ करन्ति ण थक्कइ, कुढे लगउ लगउ जो सक्कइ<sup>72</sup>
5. सहो साहणेण कटइय देहु, आवन्तउ दीसइ कवणु एहु ।<sup>73</sup>

### 2.2.31 क्रियार्थक क्रिया + मूल क्रिया

1. रयणिहि-भवणु व णिदिदवउ, किर उट्ठवण करेइ पडीवउ ।<sup>74</sup>

### 2.2.32 पूर्वकालिक क्रिया + मूल क्रिया

1. परियंवेवि णवेवि थुरोवि णिविट्ठ, सयल विजणुवयइ लयन्तुदिट्ठ ।<sup>75</sup>
2. एम भणोवि तेण हक्कारिउ, 'कहि तियलेविजाहि' पच्चारिउ ।<sup>76</sup>

### 2.2.33 क्रियार्थकाभ्यास

1. कहि वि घोर-मंडणं, सिरोह देह खंडणं ।  
णरिन्द-विन्द दारणं, तुरंग-मग वारणं ।<sup>77</sup>

### 2.2.34 वर्तमानकालिक कृदन्ताभ्यास

1. भज्जंतं महरहाइं जुज्भंतं सुहडाइं, णिग्गंतं अंताइं ।  
भिज्जंतं गत्ताइं, लोहंतं चिन्हाइं, तुट्ठंतं छत्ताइं ।<sup>78</sup>
2. वुच्चइ मरह णराहिवइ, सर मज्झि तरन्ततरन्ताइं ।<sup>79</sup>
3. तेहएँ वि महारणे, मेइणि कारणे, रहोतरन्तितरन्ति णर ।<sup>80</sup>

### 2.2.35 भाववाच्याभ्यास—

1. अहो धरहि विहीसण जत्ताइं, वणो मेच्छहि पिट्टिज्जन्ताइं ।<sup>81</sup>

### 2.2.36 अनुकरणात्मक क्रियाभ्यास—

1. दुमुदुमु दुमंतं दुंदुहि वमाल घुमु घुमु, घुमंतं घुमुक्कतालु ।  
सिमि, सिमि सिमंतं भल्लरि णिहाउ ..... ।<sup>82</sup>
2. कत्थइ वोलावोल्लि वरावरि, कत्थइ हुक्का हुक्कि घराघर ।<sup>83</sup>

### 2.2.37 अवधिपरक क्रियाविशेषण/गणनीय/अगणनीय—

1. जो जाय-दिणहो लगेवि सणेहु, सोवल-लक्खणहं खयहो रोहु ।<sup>84</sup>
2. अज्जहो लगेवि तुहुं महु राणउ ।<sup>85</sup>
3. वसुहार पवरिसिय पुणु विताम, अण्णु वि अट्ठारह पक्खजाम ।<sup>86</sup>
4. तीस पक्ख पहु पंगणएँ, वसुहार वरिड्ठी ।<sup>87</sup>
5. तहो दिवसहो लगेवि अद्धु वरिसु, गिब्बाण पवरिसिय रयण वरिसु ।<sup>88</sup>

### 2.2.38 प्रकरणाध्य/संबर्भाध्य

1. जिह जिह मारुइ समरे णभज्जइ, तिह तिह कण्ण णिरारिउ रज्जइ ।<sup>89</sup>

2. काविकन्त सिरें बन्धइ फुल्लइं, वत्थइं परिहावेइ अमुल्लइं ।<sup>90</sup>
3. पुणु तिहि मि जणहुं दरिसावियउ, सिव-साण-सिवालेहिंखावियउ ।<sup>91</sup>

### 2.2.39 क्रमिकता-क्रियान्वयता

1. जं असहेज्जी मुक्क वरान्तरें, मुच्छउ एन्ति-जन्ति तहिं अवसरें ।<sup>92</sup>
2. रगों परिसक्कन्ति भमन्ति किह, चल चंचल विज्जुल पुंजजिह ।<sup>93</sup>
- 3- ण जलद्द ण चन्दरा कम्मल सेज्ज, ढुक्कन्ति जन्ति, अण्णोण्ण वेज्ज ।<sup>94</sup>
4. वट्टइ तल्लवेल्ल सत्तमयहों मुच्छउ एन्तिजन्ति अट्ठमयहों ।<sup>95</sup>
5. तहिं तिणिण वि कइ वि दिवस थियइं, जिण पुज्जउ जिण-ण्हवराइं कियइं ।<sup>96</sup>

2.2.4 वर्धमानस्वघोतक पक्ष—मूलक्रिया के साथ सातत्यपक्ष जुड़ा होने पर इसका भान होता है। यह सातत्यपक्ष का एक विशिष्ट रूप भर है-

1. तिणिण वि कण्णउ परिवड्ढियउ, रां सुक्कइ कहउ रसवड्ढियउ ।<sup>97</sup>
2. जाइं वि ढिल्ली होन्ताइं, ताइ मि रण रस पुलउग्गयइं ।  
णिणें वि परोप्परु चिन्धाइं, सुहडहुं कवयइं फुट्टविगयइं ।<sup>98</sup>
3. अग्भिट्टु परोप्परु जुज्भु घोरु, सरि सोत्त-सउत्तर पहर थोरु ।  
द्धिज्जन्त महग्गय गरुअग्गत्तु, णिवडन्त समुद्धय-धवल छत्तु ।<sup>99</sup>

2.2.5 पौनः पुन्य घोतक पक्ष-इस 'पक्ष' के द्वारा कथन के क्षण में व्यापार के बार-बार होने की सूचना मिलती है। यह एक प्रकार से समय विस्तार का बोध है।

### 2.2.50 वर्तमानकालिक क्रियाभ्यास-

1. लब्धइ पेसगों सामिय पसाउ, लब्धइ किणें विराणें जणाणुराउ ।<sup>100</sup>
2. साहारु ण वन्धइ एइजाइ, अरहट्टजन्ते णव घडिय णाइं ।<sup>101</sup>

### 2.2.51 पक्ष परिमाणक क्रियाविशेषण + वर्तमान कालिक क्रियारूप-

1. जेत्तिय दणु दु-जउ संभवइ, तेत्तिय पहरन्तहुं जसु भमइ ।<sup>102</sup>

2.2.6 अभ्यासघोतक पक्ष-सामान्यतः अभ्यासघोतक पक्ष के लक्षण आवृत्ति, नित्यता या अनुक्रम माने जाते हैं, परन्तु जिन व्यापारों का संबंध भौतिक या मानसिक अवस्था से होता है, उन पर आवृत्ति, नित्यता या अनुक्रम लक्षणों को उस रूप में आरोपित नहीं किया जा सकता, जिस रूप में आवृत्तिपरक या प्रक्रियात्मक व्यापारों पर। अतः अभ्यासघोतक पक्ष में अवस्था-विस्तार और सुदूरता निहित लक्षण रहता है। इसमें 'सातत्य' तथा 'वर्धमानत्व' की अपेक्षा अधिक गहनता और तीव्रता होती है।

### 2.2.60 वच्छीलता-

दुज्जण मुह इव विन्धण सीलइं, विस-हल इव मुच्छावण लीलइं ।<sup>103</sup>

2. विणिण वि तरा-ते याहय-तिमिर, विणिण वि जिण-चरण-कमल-णमिर ।<sup>104</sup>
3. णिल्लोणु मुअइ सलोणु सरइ णिय सहाउ एँउ तियमइहेँ ।<sup>105</sup>

### 2.2.61 नित्यता और आवृत्ति

- 1- अहि असइ तो वि सिहि महरवाणि ।<sup>106</sup>
2. मणु जुज्भहोँ उप्परि तासु णिरारिउ अच्चहइ ।<sup>107</sup>
3. खल खुद्दइँ दुक्कियकाराई, णारइय णरय-पइसाराई ।<sup>108</sup>
4. अच्चंत सहंत चिततिहि मि, पहुसेव सुदुक्करु सब्वहम्मि ।<sup>109</sup>

2.2.7 प्रगति द्योतक पक्ष-इससे व्यापार के निरन्तर विकास की प्रक्रिया सूचित होती है अर्थात् व्यापार पूर्ण नहीं हुआ है, बल्कि उसके विकास की प्रक्रिया प्रगति पर है ।

### 2.2.70 भूतकालिक कृदन्त-धातु + इज्ज + वर्तमान कालिक तिङ्तरूप-

पत्तिय एवहि रावणु जिज्जइ, णिय मणोँ सयल संकवज्जिज्जइ ।  
मिलिउ विहीसणु सुलंक पईसहोँ, लगउ करयले सीयहलीसहोँ ।<sup>110</sup>

### 2.2.71 भूतकालिक कृदन्तों की विकसनशीलता-

1. .... परिउली दिवसु अत्थमिउ मित्तु ।  
अणुरत्त सज्ज ण वेस आय, णं रक्खसिरत्तारत्तजाय ।  
बहलन्धयार पुणु दुक्कु राइ, मसि खप्परु विहिउ समत्थ णाडं ।<sup>111</sup>

### 2.2.72 वर्तमानकालिक विकसनशील क्रियाभ्यास-

1. भीसण रयणि हिँ भीसण अडइ, खाइ व गिलइ व उवरि व पडइ ।<sup>112</sup>
2. वइरइँ ण कुहन्ति जज्जरइँ, हउ हगाइँ गिरुत्त सत्तमवन्तरइँ ।<sup>113</sup>

2.2.8 समाप्ति द्योतक पक्ष-इसमें कार्य की पूर्णता आंतरिक काल क्षेत्र के भीतर से तथा प्रारंभ, मध्य और अन्त आदि विभिन्न चरणों से बनी एक प्रक्रिया की समाप्ति के रूप में देखी जाती है । ✓हो, ✓लगा, ✓आसी, ✓कर आदि रंजक क्रियाएँ इसकी द्योतक हैं ।

### 2.2.80 विशेषण + रंजक क्रिया ✓हो

1. कि दुव्वलि ह्यउ कुमार तुहुँ ।<sup>114</sup>
2. मुहली ह्यउ कम जुयलु कि रोउर सद्दें ।<sup>115</sup>
3. गउ वन्दणं उत्तिँ जिनवरासु, आसण्णी हूउ महीहरासु ।<sup>116</sup>
4. गय पाएँ बुड्ढी ह्यएँ ण मएँण जि कह व ण मारियइँ ।<sup>117</sup>

### 2.2.81 विशेषण + रंजक क्रिया ✓कर्

1. जेण गिरत्थी किउ गालकुव्वर ।<sup>118</sup>

### 2.2.82 भूतकालिक कृदन्त+रंजक क्रिया 'ग्रासी'

1. ग्रासि गिसियरिणँ ग्रासि, जं गिलियउ णाइं पणविउ जउ उगिलियउ ।<sup>119</sup>

### 2.2.83 भूतकालिक कृदन्त-

1. पुण्ण-महक्खएँ पेक्खु किह वज्जमएँ वि खम्मे घुणु लगउ ।<sup>120</sup>

**2.3 स्थित्यात्मक पक्ष**—इसमें स्थित का बोध क्रिया रूप से न होकर संपूर्ण वाक्य द्वारा होता है और विशेष अस्तित्व या स्थिति की सूचना देता है जिसकी कालावधि अनिर्धारित होती है। इसलिए इसे 'कालानुवर्तन हीनता' नाम भी दिया गया है।<sup>121</sup> वर्तमानकालिक अस्तित्ववाचक क्रिया में कालावधि के आदि और अंत को सीमित नहीं किया जा सकता है।<sup>122</sup>

### 2.3.1 वर्तमानकालिक कृदन्त+रंजक क्रिया√अच्छ

1. पहिलएँ पहरद्धेँ वि चिन्तमाणु, अच्छइ गिण्णु पुरिसेहिँ समाणु ।<sup>123</sup>

### 2.3.2 क्रियार्थक क्रिया+रंजक क्रिया√सक्

1. सिरिमाल धणुद्धरुणुमुहेँ, दुद्धरु घरेवि ण सक्किउ सुखरेहिँ ।<sup>124</sup>

### 2.3.3 पक्ष परिमाणक-

1. जेत्यु पईवु तेत्थु सिहणज्जइ, जेत्यु अणंगु तेत्थु रइ जुज्जइ ।  
जेत्यु सरोहु तेत्थु पणयजलि, जेत्यु पयंगु तेत्थु किरणावलि ।<sup>125</sup>
2. थिय चउपासेँ परम जिगिन्दहोँ, णं तारागह पुण्णाम-चन्दहोँ ।  
वइरइं परिसेसिव थिय वणयर, महिस तुरंगम केसरि कुंजर ।<sup>126</sup>

**2.3.4 नित्यत्व बोधक पक्ष**—इससे कार्य व्यापार की आवृत्ति या एक अनिश्चित अवधि तक विस्तार का बोध होता है जो वर्तमानकालिक अन्वय में गृहीत रहता है।

1. जो णरवइ अस सम्माणकरु, सो पत्तिय अत्थ-समत्थहरु ।<sup>127</sup>
2. चोर-जार-अहि-वइरहुं, हुअवहुअमरहुं, जो अवहेरि करइ णरु ।  
सो अइरेण विणासइ, वसणु पयासइ मूलतलुक्खउ जेमतरु ।<sup>128</sup>
3. अपरिक्खिउ किज्जइ कज्जण वि ।<sup>129</sup>
4. गिण्णुगण जइवि धम्मु परिचत्ता, ते जि बन्धु जे अवसरेँ पत्ता ।<sup>130</sup>
5. णाह ण होइ एहु भल्लारउ, सव्वहं जणण-वइस वड्डारउ ।<sup>131</sup>
6. कोदीसइ अत्थमिणँ सूरेँ ।<sup>132</sup>
7. सच्चु महन्तउ सव्वहोँ पासिउ ।<sup>133</sup>
8. सुहिजेँ सूलु पडिक्कलउ, परजेँ सहोयरु जो अणुअत्तइ ।<sup>134</sup>

**2.4 उत्परिवर्तन घोटक पक्ष**—उक्त पक्ष से किसी अन्य या आगत व्यापार या साधन से प्रभावित होकर परिवर्तित होने का भाव व्योक्त होता है।<sup>135</sup> यह एक प्रकार का कर्मवाच्य है।<sup>136</sup> और मुख्यतः भूतकालिक कृदन्त में संग्रहित है।



1. जहँ चन्दकन्तिमणि चंदियउ ससि मरोवि अनदियेहेँ जेँ वंदियउ ।  
जहँ सुरकन्तिमणि विप्फरियउ, रवि मरोवि जलाई मुअन्ति दिय ।<sup>137</sup>
2. ऐत्तडउ जाम जंपइ वयणु, गउताम दिवायरु अत्थवणु ।  
पडिवणु रयणि वित्थरिउ तमु, कउहंतर कसणि-करण खमु ।<sup>138</sup>
3. छुडु जे छुडु जेँ सरयहो आगमरोँ, सच्छाय महादुमजायवरो ।<sup>139</sup>

यह स्वयंभू के 'पक्ष' विचार का चंचुग्राही प्रयास है। जब आधुनिक भारतीय भाषाओं में 'पक्ष' संबन्धी अनेक रूप अन्वेष्य हैं तो उसके आरंभिक रूप में भी वे बीज विद्यमान होने चाहिए जो आगे जाकर वृक्ष बने हैं। हिन्दी के अनेक रूप तो वैसे के वैसे ही हैं। अतः यह प्रारंभिक होते हुए भी विचारोत्तेजक होगा और हिन्दी प्रभृति आधुनिक भारतीय भाषाओं का अपभ्रंश से द्रवीभूत रूप में सम्बन्ध जोड़ने में दिशा-निर्देशक भी, प्रभाव का संकेत बहिरत्व का सूचक होता है, न कि अपनत्व और आन्तरिकता का।

1. हाकेट, ए कोर्स इन मार्टन लिंग्विस्टिक्स, न्यूयार्क, 1958, पृ. 273 ।
2. ल्योन्स, इंटीरोडक्शन टु थ्यॉरीटीकल लिंग्विस्टिक्स, 1968 पृ. 313 ।
3. रमानाथ सहाय, हिन्दीकाल, वृत्ति और पक्ष, गवेषणा, 1978 अंक 31, पृ. 20-33 ।
4. (अ) पालित्तएणरइया वित्थरओ तस्सदेसी वयरोहि, पदालिप्त सूरि, याकोबी, सन-त्कुमार चरित की भूमिका, 1921 पृ. 178 ।  
(आ) पाययभासा रइया भाहट्ठयदेसी वयणणिबद्धा, उद्योतन सूरि, लीलावई की भूमिका, भा. वि. भ. पृ. 178 ।  
(इ) भारीयं च पिययभाए रइयं मरहट्ठ देसी भासाए, कोऊहल लीलावईगाहा, 13/30 ।  
(ई) सक्कयपायय पुलिणालंक्रियदेसीभासा उभयतडुज्जल । स्वयंभू, पउमचरिउ, भयाणी, 1953, 1.2.3-4 ।  
(उ) ण हउं होमि वियव-खणु ण मुणमि लक्खणु छंद देसिण वियाणमि । पुष्पदन्त, महापुराणु, डॉ. हीरालाल जैन, भा. दि. जैन ग्रंथमाला बंबई, 1941 1.8.10 ।  
(ऊ) ततो देशे देशे प्रति विषयं लोकः पामर जनो यया यया गिरा भ्रष्ट्या । पं. दामोदर, उक्ति व्यक्ति प्रकरण श्लोक 37, विवृति ।  
(ए) देसिल बअना सवजन मिट्ठा, विद्यापति, कीर्तिलता, 1.21-22 ।
5. डॉ. भयाणी, पउमचरिउ, भाग-1, भा. वि. भ., 1953, भूमिका पृ. 68.69.71 ।
6. डॉ. बाबूराम सक्सेना, सामान्य भाषा विज्ञान, हि. सा. स. प्रयाग, 1965, पृ. 142 ।
7. वेन्द्रियेज, अनु. बलवीर, भाषा इतिहास की भाषा वैज्ञानिक भूमिका, सूचना विभाग उत्तरप्रदेश, लखनऊ 1966, पृ. 120 ।
8. डॉ. राजगोपालन, हिन्दी का भाषा वैज्ञानिक व्याकरण, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा, 1971, पृ. 74 ।

9. ज. म. दीमशित्स, हिन्दी व्याकरण की रूपरेखा, दिल्ली, 1966, पृ. 174 ।
10. डॉ. बाबूराम सक्सेना, सामान्य भाषा विज्ञान, हि. सा. स., 1965, पृ. 145 ।
11. येस्पर्सन द् फिलासफी अन्व ग्रामर, लन्दन, 1951 पृ. 286 ।
12. वेन्द्रियेज, अनु. बलवीर, भाषा इतिहास की भाषा वैज्ञानिक भूमिका, लखनऊ, 1966 पृ. 120 ।
13. डॉ. भोलानाथ तिवारी, (सं.) हिन्दी वाक्य संरचना, साहित्य सहकार दिल्ली, 1986, डॉ. रवीन्द्र श्रीवास्तव, 'पक्ष एक पुनर्विचार', पृ. 403-406 ।
14. डॉ. एस. तोम्बा सिंह, व्याकरणिक कोटियों का अध्ययन, ज्ञानभारती दिल्ली, 1984, पृ. 210 ।
15. भर्तृहरि, वाक्यपदीय, 3.12 ।
16. वही, 3.26 ।
17. दुर्गाचार्य, निरुक्तभाष्य, बम्बई, 1942, 1.1.1 ।
18. भर्तृहरि, वाक्यपदीय, 3.4 ।
19. पतंजलि, महाभाष्य, भाग 3, बम्बई, 1982, 5.4.19 ।
20. वही, 5.4.17 ।
21. वही, काशिका, 3.1.22 ।
22. लायन्स, सेमेन्टिक्स, जि. 1, 2, क्रेम्ब्रिज सी. यू. प्रेंस, पृ. 682 ।
23. डॉ. सूरजभान सिंह, हिन्दी वाक्यात्मक व्याकरण, साहित्य सहकार, 1985, पृ. 117-120 ।
24. डॉ. रवीन्द्र श्रीवास्तव, भाषा, हिन्दी भाषा विज्ञान अंक, 'काल और पक्ष', पृ. 206 ।
25. कॉमरी, 'एस्पेक्ट', क्रेम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेंस, 1976, पृ. 3 ।
26. जोन्सन, एयूनीफायड टेम्पोरल थ्योरी अक्टेन्स एंड एस्पेक्ट इन टेडेस्वी, न्यूयार्क अकादमी प्रेंस, 1981, पृ. 152 ।
27. सं. भोलानाथ तिवारी, हिन्दी भाषा की वाक्य संरचना, साहित्य सहकार, दिल्ली 1986, हिन्दी में पक्ष-एक विश्लेषण, ले. रघुवंशमणि पाठक, पृ. 297 ।
28. पउमचरिउ, डॉ. भयाणी, सिंधी जैन ग्रंथमाला, बम्बई, 22.12.3 ।
29. वही, 1.12.8
30. वही, 2.15.1
31. वही, 4.4.9
32. वही, 2.5.9
33. वही, 19.8.10
34. वही, 6.15.2
35. वही, 40.4.5
36. वही, 44.2.2
37. वही, 19.10.9
38. वही, 23.12.6
39. वही, 2.13.9
40. वही, 16.13.5

41. वही, 10.10.8
42. वही, 40.4.5
43. वही, 2.10.5
44. वही, 39.11.1
45. वही, 37.8.4
46. वही, 28.3.2
47. वही, 10.2.4
48. वही, 1.9.1
49. वही, 10.2.4
50. वही, 35.9.3
51. वही, 77.5.10
52. वही, 65.9.3
53. रिट्ठणेमिचरिउ, 28.6.3-4
54. पउमचरिउ, 36.7.4
- 54.A रिट्ठणेमिचरिउ, 28.1.4
- 54.B वही, 28.1.9
55. पउमचरिउ, 3.7.4
56. वही, 31.15.3
57. वही, 53.3.10
58. वही, 20.8.2
59. वही, 31.16.2
60. वही, 43.6.11
61. वही, 66.5.2-3
62. वही, 89.11.5
63. वही, 16.9.3
64. वही, 64.11.6
65. वही, 17.8.9
66. वही, 64.15.1
67. वही, 75.5.10
68. रिट्ठणेमिचरिउ 28.8.3
69. पउमचरिउ 90.1.9
70. वही, 23.1.9
71. वही, 19.9.10
72. वही, 38.15.1
73. वही, 44.2.2
74. वही, 55.4.3
75. वही, 18.1.8
76. वही, 38.16.8
77. वही, 61.4.1
78. रिट्ठणेमिचरिउ. 7.6
79. पउमचरिउ, 79.10.9
80. वही, 17.2.9
81. वही, 9.10.8
82. रिट्ठणेमिचरिउ, 8.9
83. पउमचरिउ, 52.9.2
84. वही, 86.8.2
85. वही, 20.11.8
86. वही, 1.16.7
87. वही, 1.14.9
88. वही, 1.16.4
89. वही, 48.13.1
90. वही, 59.3.8
91. वही, 9.11.2
92. वही, 81.12.3
93. वही, 64.3.8
94. वही, 22.5.5
95. वही, 38.5.8
96. वही, 34.9.7
97. वही, 47.2.4
98. वही, 8.5.11
99. वही, 65.9.2-3
100. वही, 69.12.4
101. वही, 45.7.9
102. वही, 71.13.6
103. वही, 63.10.5
104. रिट्ठणेमिचरिउ, 28.16.5
105. पउमचरिउ, 69.6.11
106. वही, 16.7.3
107. वही, 16.3.10
108. वही, 33.12.5
109. रिट्ठणेमिचरिउ, 28.1.5
110. पउमचरिउ, 57.10.6-8

111. वही, 86.16.2-4
112. वही, 19.3.2
113. वही, 33.7.9
114. वही, 18.5.9
115. वही, 1.13.9
116. वही, 1.8.5
117. वही, 75.6.10
118. वही, 20.4.7
119. वही, 23.12.6
120. वही, 76.14.9
121. डॉ. राजगोपालन, हिन्दी भाषा वैज्ञानिक व्याकरण, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा, 1971, गवेषणा, 18, पृ. 75 ।
122. डॉ. रवीन्द्र श्रीवास्तव, काल और पक्ष, भाषा विज्ञान अंक, 1973, प. 203 ।
123. पउमचरिउ, 16.3.2
124. वही. 17.4.10
125. वही, 73.11.7-8
126. वही, 3.10.8
127. वही, 36.13.1
128. वही, 71.12.10
129. वही, 19.4.7
130. वही, 74.15.6
131. वही, 77.15.9
132. वही, 77.8.8
133. वही, 23.2.9
134. वही, 57.1.9
135. पाठक रघुवंशमणि, हिन्दी की व्याकरणिक धाराएं, शोध प्रबन्ध, संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ।
136. डॉ. राजगोपालन, गवेषणा 18, पृ.75
137. पउमचरिउ, 6.7.4-5
138. रिट्ठरोमिचरिउ, 28.9.3-4
139. पउमचरिउ, 32.2.2

## ‘एउ ण जाणहो एककु पर’

.....चवइ रहुणन्दणु, ‘जाणमि सीयहे’ तरणउ सइत्तणु ।  
जाणमि जिह हरि-वंसुप्पणी, जाणमि जिह वय-गुण-संपणी ।  
जाणमि जिह जिण-सासणे भत्ती, जाणमि जिह महु सोक्खुप्पत्ती ।  
जा अणु-गुण-सिक्खा-वयधारी, जा सम्मत्त-रयण-मणिसारी ।  
जाणमि जिह सायर-गम्भीरी, जाणमि जिह सुर-महिहर-धीरी ।  
जाणमि अंकुस-लवण-जणेरी, जाणमि जिह सुय जणयहो केरी ।  
जाणमि सस भामण्डल-रायहो, जाणमि सामिणि रज्जहो आयहो ।  
जाणमि जिह अन्तेउर-सारी, जाणमि जिह महु पेसण-गारी ।  
घत्ता—मेल्लेप्पिणु णायर-लोएँण, महु घरे उब्भा करे वि कर ।  
जो दुज्जसु उपपरे घित्तउ, एउ ण जाणहो एककु पर ।’

—रघुनन्दन (राम) कहते हैं—[मैं] सीता का सतीत्व जानता हूँ । वह हरिवंश जैसे [वंश] में उत्पन्न हुई [यह] जानता हूँ । [वह] व्रतों और गुणों से जिस प्रकार संपन्न है, जानता हूँ । [वह] जिस प्रकार जिन-शासन में आस्था रखती है, जानता हूँ, मुझे जिस प्रकार सुख देती रही है, जानता हूँ । जो अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रतधारी है, जो सम्यग्दर्शन आदि रत्न-मणियों से युक्त है । [वह] सागर जैसी गंभीर है, जानता हूँ, सुमेरु पर्वत जैसी धीर है [यह] जानता हूँ । [वह] लवण और अंकुश की जननी है [यह भी] जानता हूँ, राजा जनक की पुत्री है [यह भी] जानता हूँ । वह राजा भामण्डल की बहन है, जानता हूँ, यह भी जानता हूँ कि वह इस इस राज्य की स्वामिनी है । जानता हूँ कि वह अन्तःपुर में श्रेष्ठ है, वह जिस प्रकार मेरी सेवा करनेवाली है (मैं यह भी) जानता हूँ ।

किंतु नागर-जनों ने मिलकर मेरे घर पर हाथ ऊँचे कर (कर) के यह कलंक क्यों लगाया ? मैं यह नहीं जानता ।

# पउमचरिउ का एक प्रसंग व्याकरणिक विश्लेषण

—डॉ. कमलचन्द सोगाणी

□

‘पउमचरिउ’ महाकवि स्वयंभू की अमर कृति है। अपभ्रंश भाषा में निबद्ध यह एक उच्चकोटि का महाकाव्य है। इसी ग्रन्थ में से हमने एक प्रसंग का चुनाव करके उसकी भाषा का व्याकरणिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इससे अपभ्रंश भाषा के व्याकरण को प्रयोगात्मक रूप से समझने में सहायता मिलेगी। व्याकरण को प्रस्तुत करने में जिन संकेतों का प्रयोग किया गया है वे नीचे दे दिए गए हैं। यहाँ उस प्रसंग का अनुवाद भी किया गया है। यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि भाषा का व्याकरण और अनुवाद एक दूसरे से घनिष्ठरूप से संबंधित होते हैं।

27.14.9

वरि पहरिउ वरि किउ तवचरणु वरि विमु हालाहलु वरि मरणु ।

वरि अचिछउ गम्पिणु गुहिल-वणे णवि णिविसु वि णिवसिउ अबुहयणे ॥

वरि (अ) = अधिक अच्छा पहरिउ (पहर(भूकृ) → पहरिअ) भूकृ 1/1. किउ (कि → किअ) भूकृ 1/1 तवचरणु [(तव) — (चरण) 1/1] विमु (विस) 1/1 हालाहलु

(हालाहलु) 1/1 मरणु (मरण) 1/1 अच्छिउ (अच्छ→अच्छिअ) भूक 1/1 गम्पिणु<sup>1</sup>  
(गम+एपिणु=गमेपिणु (ए का लोप)→गम्पिणु) संकृ गुहिल-वणे [(गुहिल) वि-(वण)  
7/1] एवि (अ)=नहीं एविसु-एविस (अ)=पल भर वि (अ)=किन्तु एविसिउ  
(णिवस→णिवसिअ) भूक 1/1 अबुहयणे [(अबुह=अबुह) वि (यण) 7/1], (9)

1. गम् में संबंधक कृदन्तअर्थक प्रत्यय 'एपिणु' और 'एपि' को लगाने पर आदि-स्वर 'एकार' का विकल्प से लोप हो जाता है। यहाँ बनना चाहिए 'गम्पिणु' पर यहाँ 'गम्पिणु' प्रयोग पाया जाता है, (हे. प्रा. व्या. 4-442) ।

(व्यक्तियों के द्वारा) (यदि) प्रहार किया गया है, (तो) अधिक अच्छा (है), (यदि) तप का आचरण किया गया (है), (तो) (भी) अधिक अच्छा (है), (यदि) हालाहल विष (पिया गया है), (तो) (भी) अधिक अच्छा (है), मरना (भी) अधिक अच्छा (है), गहरे वन में जाकर टिके हुए (होना) (भी) अधिक अच्छा (है), किन्तु पल भर (भी) मूर्ख जन में ठहरे हुए (रहना) (अच्छा) नहीं (है) ।

## 27.15

तो तिणिण वि एम चवन्ताई । उम्माहउ जणहो जणन्ताई ॥ 1 ॥  
दिरण-पच्छिम-पहरे विणिगयाई । कुञ्जर इव विउल-वणहो गयाई ॥ 2 ॥  
विथिण्णु रण्णु पइसन्ति जाव । एणगोहु महादुमु दिट्ठु ताव ॥ 3 ॥  
गुरु-वेसु करे वि सुन्दर-सराई । णं विहय पढावइ अक्खराई ॥ 4 ॥  
वुक्कण-किसलय क-क्का रवन्ति । वाउलि-विहङ्ग कि-क्की भणन्ति ॥ 5 ॥  
वण-कुक्कुड कु-क्कू आयरन्ति । अण्णु वि कलावि के-क्कइ चवन्ति ॥ 6 ॥  
पियमाहविउ को-क्कउ लवन्ति । कं-का वप्पीह समुल्लवन्ति ॥ 7 ॥  
सो तरुवरु गुरु-गणहर-समाण । फल-पत्त-वन्तु अक्खर-णिहाणु ॥ 8 ॥

यत्ता—पइसन्तेहि असुर-विमद्दणेहि सिरु णामेवि राम-जणहणेहि ।  
परिअञ्चेवि दुमु वसरह-सुएँहि अहिणन्दिउ मुणि व सइंभुएँहि ॥ 9 ॥

तो (अ)=तब तिणिण (ति) 1/2 वि वि (अ)=ही एम (अ)=इस प्रकार से चवन्ताई (चव→चवन्त) वकृ 1/2 उम्माहउ (उम्माहअ) 2/1 'अ' स्वाधिक जणहो<sup>1</sup> (जण) 6/1 जणन्ताई (जण→जणन्त) वकृ 1/2, (1)

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर पठ्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134) ।

दिरण-पच्छिम-पहरे [(दिरण) - (पच्छिम) वि-(पहर) 7/1] विणिगयाई<sup>1</sup>=विणिगयाई (विणिगय) भूकृ 1/2 अनि कुञ्जर (कुञ्जर) 1/1 इव (अ)=की तरह विउल-वणहो<sup>2</sup> [(विउल) वि-(वण) 6/1] गयाई=गयाई (गय) भूकृ 1/2 अनि, (2)

1. मात्रा को ह्रस्व करने के लिए यहां 'ँ' लगाया गया है। (हे. प्रा. व्या. 4-410)

2. कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हे. प्रा. व्या. 3-134)।

वित्थिण्णु<sup>1</sup> (वित्थिण्ण) भूकृ 2/1 अनि रण्णु<sup>1</sup> (रण्ण) 2/1 पइसन्ति (पइस→पइसन्त (स्त्री)→पइसन्ति) वकृ 1/2 जाव (अ) = ज्योहि णगोहु (णगोह) 1/1 महाडुमु [(महा)-(दुम) 1/1] विट्ठु (दिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि ताव (अ) = त्योहि, (3)

<sup>1</sup>'गमन' अर्थ में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।

गुरु-वेसु [(गुरु)-(वेस) 2/1] करेँवि (कर+एवि) संकृ सुन्दर-सराइँ [(सुन्दर)-(सर) 2/2] णं (अ) = मानो विहय (विहय) 2/2 पढावइ (पढ+आव) व प्रे. 3/1 सक अक्खराइँ (अक्खर) 2/2, (4)

बुक्कण-किसलय [(बुक्कण=बुक्कण)-(किसलय<sup>1</sup>) 2/2] कक्का (कक्का) 2/2 रवन्ति (रव) व 3/2 मक वाउलि-विहङ्ग [(वाउलि=वाउलि)-(विहङ्ग) 1/2] कि-क्की (कि-क्की) 2/2 भणन्ति (भण) व 3/2 सक, (5)

<sup>1</sup>कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम. प्रा. व्या. 3-137)।

वण-कुक्कुड [(वण)-(कुक्कुड) 1/2] कु-क्कू (कु-क्कू) 2/2 आयरन्ति (आयर) व 3/2 सक अण्णु (अण्ण) 1/1 वि वि (अ) = तथा कलावि (कलावि) 1/2 के-क्कइ (के-क्कई) 2/2 चवन्ति (चव) व 3/2 सक, (6)

पियमाहविय [पिय)-(माहविया) 1/2] उ (अ) = पाद-पूति को-क्कउ [को-क्कु) 2/2 लवन्ति (लव) व 3/2 सक कं-का (कं-का) 2/2 वप्पीह (वप्पीह=वप्पीह) 1/2 समुल्लवन्ति (समुल्लव) व 3/2 सक, (7)

सो (त) 1/1 सवि तरुवरु [(तरु)-(वर) 1/1 वि] गुरु-गणहर-समाणु [(गुरु)-(गणहर)-(समाण) 1/1 वि] फल-पत्त-वन्तु [(फल)-(पत्त)-(वन्त) 1/1 वि] अक्खर-णिहाणु [(अक्खर)-(णिहाण) 1/1], (8)

पइसन्तेहिँ (पइस→पइसन्त) 3/2 असुर-विमद्दणेहिँ [(असुर)-(विमद्दण) 3/2] सिरु (सिर) 2/1 णामेवि (णाम+एवि) संकृ राम-जणद्दणेहिँ [(राम) वि-(जणद्दण) 3/2] परिअञ्चेवि (परिअञ्च+एवि) संकृ डुमु (डुम) 1/1 बसरह-सुएहिँ [(दसरह)-(सुअ) 3/2] अहिणन्दिउ (अहिणन्द→अहिणन्दिअ) भूकृ मुणि (मुणि) 1/1 व (अ) = की तरह सइँभुएहिँ (सइँभुअ) 3/2, (9)

तब तीनों ही (राम, लक्ष्मण व सीता) (उस) मनुष्य में अतिपीड़ा को उत्पन्न करते हुए (और) इस (उपर्युक्त) प्रकार से कहते हुए (1) दिन के अन्तिम प्रहर में बाहर निकल



गए (और) हाथी की तरह घने वन में चले गये (2) । ज्योंही विशाल वन में प्रवेश करते हुए (वे) (आगे बढ़े), त्योंही (उनके द्वारा) बरगद का महावृक्ष देखा गया (3) । (वह वृक्ष ऐसा था) मानो शिक्षक के रूप को धारण करके सुन्दर स्वर व अक्षर पक्षियों को पढ़ाता हो (4) । कौए नये कोमल पत्तों (बाली टहनी) पर (बैठे हुए) क-क्का, क-क्का बोलते थे (और) बाउलि पक्षी कि-क्की, किक्की, कहते थे (5) । जलमुर्गे कु-क्कू, कुक्कू कहते थे, और भी मोर (तथा) के-क्कई, के-क्कई बोलते थे (6) । कोयलें को-क्कऊ, को-क्कऊ बोलती थीं (तथा) पीपीहा कंका, कंका बोलते थे (7) । (इस तरह से) वह श्रेष्ठ वृक्ष फल-पत्तों-वाला था (और) गुरु गणधर के समान अक्षरों का भण्डार था (8) ।

असुरों का नाश करनेवाले दशरथ के पुत्र, राम-लक्ष्मण द्वारा वन में प्रवेश करते ही (बरगद का) वृक्ष मुनि की तरह नमन किया गया और (उसकी) परिक्रमा करके (उनके द्वारा) स्वयं अपनी भुजाओं से (उसका) अभिनन्दन किया गया ।

## 28.1

सीय स-लक्खणु दासरहि तरुवर-मूले परिट्ठिय जावेहिं ।  
पसरइ सु-कइहे कव्वु जिह मेह-जालु गयणङ्गणे तावेहिं ॥

सीय (सीया) 1/1 स-लक्खणु (स-लक्खण) 1/1 वि दासरहि (दासरहि) 1/1 तरुवर-मूले [ (तरु)-(वर) वि-(मूल) 7/1 ] परिट्ठिय (परिट्ठिय) भूक 1/1 अनि जावेहिं = जावेहिं (अ) = ज्योंही पसरइ<sup>1</sup> (पसर) व 3/1 अक सु-कइहे<sup>2</sup> (सु-कइ) 6/1 कव्वु (कव्व) 1/1 जिह (अ) = की भाँति मेह-जालु [ (मेह)-(जाल) 1/1 ] गयणङ्गणे [ (गयण) + (अङ्गणे) ] [ (गयण) — (अङ्गणे) 7/1 ] तावेहिं = तावेहिं (अ) = त्योंही ।

1. वर्तमान काल का प्रयोग कभी कभी अतीत काल के लिए होता है ।
2. अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृष्ठ, 156 ।

ज्योंही दशरथ-पुत्र (राम) और सीता लक्ष्मण के साथ (उस) श्रेष्ठ वृक्ष के नीचे के भाग में टिके, त्योंही सुकवि के काव्य की भाँति बादलों के सघन समूह आकाश के आंगन में चारों ओर फैल गए ।

पसरइ मेह-विन्दु गयणङ्गणे । पसरइ जेम सेणु समरङ्गणे ॥ 1 ॥  
पसरइ जेम तिमिरु अण्णणहो । पसरइ जेम वुद्धि बहु-जाणहो ॥ 2 ॥  
पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहो । पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहो ॥ 3 ॥  
पसरइ जेम जोण्हु मयवाहहो । पसरइ जेम कित्ति जगणहो ॥ 4 ॥  
पसरइ जेम चिन्त धण-हीणहो । पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहो ॥ 5 ॥  
पसरइ जेम सद्दु सुर-तूरहो । पसरइ जेम रासि एहे सूरहो ॥ 6 ॥  
पसरइ जेम दवगि वणन्तरे । पसरइ मेह-जालु तिह अम्बरे ॥ 7 ॥  
तडितडयडइ पडइ घणु गज्जइ । जाणइ रामहो सरण पवज्जइ ॥ 8 ॥

घत्ता—अमर-महाधणु-गहिय-कर मेह-गइन्दे चडेवि जस-लुद्ध ।  
उप्परि गिम्भ-एराहिवहो पाउस-राउ णाई सण्णद्धउ ॥ 9 ॥

पसरइ (पसर) व 3/1 अक मेह-विन्दु [(मेह)-(विन्दु) 6/2] गयणङ्गणे  
[(गयण)+(अङ्गणे)] [गयण)-(अङ्गणे) 7/1] जेम (अ)=जिस प्रकार सेणु (सेणु)  
1/1 समरङ्गणे [(समर)+(अङ्गणे)] [(समर)-(अङ्गणे).7/1], (1)

तिमिरु (तिमिर) 1/1 अण्णाराणहो (अण्णाराण) 6/1 वुद्धि (वुद्धि) 1/1 बहु-  
जाणहो (बहु-जाण) 6/1 वि, (2)

पाउ (पाअ) 1/1 पाविट्ठहो (पावि+इट्ठ<sup>1</sup>→पाविट्ठ) 6/1 वि धम्मु (धम्म)  
1/1 धम्मिट्ठहो (धम्म+इट्ठ<sup>1</sup>→धम्मिट्ठ) 6/1 वि, (3)

1. इट्ठ=इष्ट (तुलनात्मक विशेषण के लिए लगाया जाता है) अभिनव प्राकृत  
व्याकरण, पृष्ठ 261 ।

जोण्ह (जोण्हा) 1/1 मयवाहहो [(मय)-(वाह) 6/1 वि] कित्ति (कित्ति) 1/1  
जगणाहहो [(जग)-(णाह) 6/1], (4)

चिन्त (चिन्ता) 1/1 धण-हीणहो [(धण)-(हीण) 6/1] कित्ति (कित्ति)  
1/1 सुकुलीणहो (सु-कुलीण) 6/1, (5)

सद्दु (सद्द) 1/1 सुर-तूरहो [(सुर)-(तूर) 6/1] रासि (रासि) 1/2 एहे  
(एह) 7/1 सूरहो (सूर) 6/1, (6)

दवगिग (दवगिग) 1/1 वणन्तरे [(वण)+(अन्तरे)] [(वण)-(अन्तर) 7/1]  
मेह-जालु [(मेह)-(जाल) 1/1] तिह (अ)=उसी प्रकार अम्बरे(अम्बर) 7/1, (7)

तडि (तडि) 1/1 तडयडइ (तडयड) व 3/1 अक पडइ (पड) व 3/1 अक  
घणु (घण) 1/1 गज्जइ (गज्ज) व 3/1 अक जाणइ<sup>1</sup> (जाणई) 6/1 रामहो (राम) 6/1  
सरणु<sup>2</sup> (सरण) 2/1 पवज्जइ (पवज्ज) व 3/1 सक, (8)

1. जाणई=जानकी, 2. 'गमन' अर्थ में द्वितीया का प्रयोग होता है ।

अमर-महाधणु-गहिय-कर [(अमर)-(महा) वि-(धणु)-(गहिय) भूक-  
(कर) 1/1] मेह-गइन्दे [(मेह)-(गइन्द) 7/1] चडेवि (चड+एवि) संकृ जस-लद्धउ  
[(जस)-(लद्धअ) भूक 1/1 अणि 'अ' स्वार्थिक] उप्परि (अ)=ऊपर गिम्भ-एराहिवहो  
[(गिम्भ)-(एराहिव) 6/1] पाउस-राउ [(पाउस)-(राअ) 1/1] णाई=णाई  
(अ)=मानो सण्णद्धउ (सण्णद्धअ) भूक 1/1 अणि 'अ' स्वार्थिक, (9)

जिस प्रकार युद्ध के क्षेत्र में सेना फैलती है (और) आकाश के क्षेत्र में जल-करणों का  
समूह फैलता है (1); जिस प्रकार अज्ञान (रूपी अंधेरी रात) का अन्धकार फैलता है,  
जिस प्रकार बहुत प्रकार के ज्ञान रखनेवाले की बुद्धि फैलती है (मजबूत होती है) (2);

जिस प्रकार अत्यन्त पापी का पाप फैलता है, जिस प्रकार अत्यन्त धार्मिक का धर्म फैलता है (3); जिस प्रकार मृग को धारण करनेवाले (चन्द्रमा) का प्रकाश फैलता है, जिस प्रकार जिनदेव की महिमा फैलती है (4); जिस प्रकार धन से रहित (व्यक्ति) की चिन्ता उभरती है, जिस प्रकार अत्यधिक शालीन का यश फैलता है (5); जिस प्रकार देवों की तुरही का शब्द फैलता है, जिस प्रकार सूर्य की किरणें आकाश में फैलती हैं (6); जिस प्रकार दावाग्नि (जंगल की आग) जंगल के मध्य में फैलती है, उसी प्रकार बादलों का समूह आकाश में फैला है (7); बादल (समूह) गरजा (और) बिजली ने तड़-तड़ किया (और) (पृथ्वी पर) पड़ी, मानो (वह) जानकी (और) राम की शरण में गई हो (8) ।

(सारा दृश्य ऐसा प्रतीत हो रहा था) मानो पावस (वर्षा ऋतु का) राजा जो यश का इच्छुक (है), (जिसका) हाथ इन्द्रधनुष को पकड़े हुए (है), (बह) मेघरूपी हाथी पर चढ़ कर ग्रीष्म-राजा के ऊपर (आक्रमण के लिए) तैयार (हो) (9) ।

## (2)

जं षाउस-णरिन्दु गलगज्जिउ । धूली-रउ गिम्भेण विसज्जिउ ॥ 1 ॥  
 गम्पिणु मेह-विन्दे<sup>१</sup> आलग्गउ । तडि-करवाल-पहारेहिं भग्गउ ॥ 2 ॥  
 जं विवरम्मुहु चलिउ विसालउ । उट्ठिउ 'हणु' भणन्तु उण्हालउ ॥ 3 ॥  
 धग धग धग धगन्तु उट्ठाइउ । हस हस हस हसन्तु संपाइउ ॥ 4 ॥  
 जल जल जल जल जल पचलन्तउ । जालावलि-फुलिङ्ग मेत्तलन्तउ ॥ 5 ॥  
 धूमावलि-धय दण्डुव्भेप्पिणु । वर-वाउल्लि-खग्गु कड्हेप्पिणु ॥ 6 ॥  
 भड भड भड भडन्तु पहरन्तउ । तरुवर-रिउ-भड-थड भज्जन्तउ ॥ 7 ॥  
 मेह-महागय-घड विहडन्तउ । जं उण्हालुउ विट्ठु भिडन्तउ ॥ 8 ॥

घत्ता—धणु अफ्फालिउ पाउसेण तडि-टङ्कार-फार दरिसन्ते ।  
 चोएवि जलहर-हत्थि हड गौर-सरासणि मुक्क-तुरन्ते ॥ 9 ॥

जं (अ) = जब पाउस-णरिन्दु [(पाउस)-(णरिन्द) 1/1] गलगज्जिउ [गलगज्ज-गल→गज्जिअ] भूक 1/1] धूली-रउ [(धूली)-(रय-रअ) 1 1/1] गिम्भेण (गिम्भ) 3/1 विसज्जिउ (विसज्जिअ) भूक 1/1 अनि, (1)

## 1. रय=वेग

गम्पिणु<sup>१</sup> (गम+एपिणु=गमेपिणु (ए का लोप)→गम्पिणु) संकृ मेह-विन्दे [(मेह)-(विन्द)<sup>२</sup> 7/1] आलग्गउ (आलग्ग→आलग्गअ) भूक 1/1 तडि-करवाल-पहारेहिं [(तडि)-(करवाल)-(पहार) 3/2] भग्गउ (भग्गअ) भूक 1/1 अनि 'अ' स्वार्थिक, (2)

1. देखें 27-14-9.

2. कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्या. 3-137) । 'गमन' अर्थ में द्वितीया होती है ।

जं (अ) = जब विवरम्मुहु (विवरम्मुहु) 2/1 वि चलिउ (चल→चलिअ) भूक 1/1 विसालउ (विसाल अ) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक उट्ठिउ (उट्ठिअ) भूक 1/1

अनि. हणु (हण) विधि व 2/1 सक भणन्तु (भण→भणन्त) वकृ 1/1 उण्हालउ (उण्ह+आल=उण्हाल→उण्हालअ) 1/1 वि 'अ' स्वाधिक, (3)

धग धग धग धगन्तु (धग धग धग धग) वकृ 1/1 उद्धाइउ (उद्धाइअ) भूकृ 1/1 अनि हस हस हस हसन्तु (हस हस हस हस) वकृ 1/1 संपाइउ (संपाइअ) भूकृ 1/1 अनि, (4)

जल जल जल जल जल (जल जल जल जल जल) व 3/1 अक पचलन्तउ (प-चल→पचलन्त→पचलन्तअ) वकृ 1/1 'अ' स्वाधिक जालावलि-फुलिङ्ग [(जाला)+ (आवलि)+(फुलिङ्ग)] [(जाला)-(आवलि) - (फुलिङ्ग) 2/2] मेल्लन्तउ (मेल्ल→मेल्लन्त→मेल्लन्तअ) वकृ 1/1 'अ' स्वाधिक, (5)

धूमावलि-धयदण्डभेप्पिणु [(धूम) + (आवलि) + (धय) + (दण्ड) + (उभेप्पिणु)] [(धूम)-(आवलि)-(धय)-(दण्ड) + (उभ+एप्पिणु) संकृ] वर-वाउल्लि-खग्गु [(वर) वि-(वाउल्लि)-(खग्ग) 2/1] कड्ढेप्पिणु (कड्ढ+एप्पिणु) संकृ, (6)

भड भड भड भडन्तु (भड भड भड भड) वकृ 1/1 पहरन्तउ (पहर→पहरन्त→पहरन्तअ) वकृ 1/1 'अ' स्वाधिक. तरुवर-रिउ-भड-थड [(तरु)-(वर) वि (रिउ)-(भड)-(थड) 2/1] भज्जन्तउ (भज्ज→भज्जन्त→भज्जन्तअ) वकृ 1/1 'अ' स्वाधिक, (7)

मेह-महागय-घड [(मेह)-(महा) वि-(गय)-(घड) 2/1] विहडन्तउ (विहड→विहडन्त→विहडन्तअ) वकृ 1/1 वि 'अ' स्वाधिक जं (अ)=जब उण्हालउ (उण्हालअ) 1/1 वि 'अ' स्वाधिक दिट्ठु (दिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि भिडन्तउ (भिड→भिडन्त→भिडन्तअ) वकृ 1/1 'अ' स्वाधिक, (8)

धणु (धण) 1/1 अण्फालिउ (अण्फल (प्रे.)→अण्फाल (भूकृ)→अण्फालिअ) भूकृ 1/1 पाउसेण (पाउस) 3/1 तडि-टङ्कार-फार [(तडि)-(टङ्कार)-(फार) 2/1] दरिसन्ते (दरिस→दरिसन्त) वकृ 3/1 चोएवि (चोअ+एवि) संकृ जलहर-हत्थि [(जलहर)-(हत्थि) 2/2] हड (हड) 2/2 वि णीर-सरासणि [(णीर)-(सरासण (स्त्री)→सरासणी) 1/2] मुक्क (मुक्क) भूकृ 1/2 अनि तुरन्ते (अ)=तुरन्त, (9)

जब पावस (वर्षा ऋतु का) राजा गरजा, (तो) ग्रीष्म द्वारा धूल-वेग (ग्राँधी) भेजी गई (1)। (वह) (धूल) मेघ-समूह से जाकर चिपक गई, (फिर) बिजली रूपी तलवार के प्रहारों से (वह) (धूल) छिन्न-भिन्न कर दी गई (2)। (इसके परिणामस्वरूप) जब (धूल) विमुख चली (तो) भयंकर उष्ण (ऋतु) (पावस राजा को) 'मारो' कहती हुई उठी (3)। (और) खूब जलती हुई ऊँची दौड़ी (तथा) उत्तेजित होती हुई (पावस-राजा की ओर) प्रवृत्त हुई (4) और (उस ओर) कूच करती हुई तेजी से जली, (तब) (उष्ण) लपट की शृंखला से चिनगारियों को छोड़ते हुए (आगे चली) (5)। (और) जब उष्ण (ऋतु) धूम की शृंखला के ध्वजदण्डों को ऊँचा करके, तूफानरूपी श्रेष्ठ तलवार को लींचकर (6), भपट मारते हुए और प्रहार करते हुए, श्रेष्ठ वृक्षों रूपी शत्रु योद्धा-समूह को

नष्ट करते हुए (7), मेघरूपी महा हाथियों की टोली को खण्डित करते हुए (पावस राजा से) भिड़ती हुई दिखाई दी (8)।

विजली की टंकार और चमक दिखाते हुए पावस के द्वारा धनुष ताना गया और बादलरूपी हाथीघटा को प्रेरित करके (उसके द्वारा) जलरूपी तीर तुरन्त छोड़ दिए गए।

(3)

जल-वाणासणि-घायहिं घाइड । गिम्भ-नराहिउ रणो विणिवाइउ ॥ 1 ॥  
 दद्दुर रडे वि लग णं सज्जण । णं णच्चन्ति मोर खल दुज्जण ॥ 2 ॥  
 णं पूरन्ति सरिउ अक्कन्दे । णं कइ किलकिलन्ति आणन्दे ॥ 3 ॥  
 णं परहुय विमुक्क उगघोसे । णं वरहिण लवन्ति परिओसे ॥ 4 ॥  
 णं सरवर बहु-अंसु-जलोल्लिय । णं गिरिवर हरिसे गज्जोल्लिय ॥ 5 ॥  
 णं उण्हविअ दवगि विओए । णं एच्चिय महि विविह-विणोए ॥ 6 ॥  
 णं अत्थमिउ दिवायह दुक्खे । णं पइसरइ रयणि सइ सुक्खे ॥ 7 ॥  
 रत्त-पत्त तर पवणाकम्पिय । केण वि वहिउ गिम्भु णं जम्पिय ॥ 8 ॥

घत्ता-तेहए काले भयाउरए वेणि मि वासुएव-वलएव ।

तरवर-मूले स-सीय थिय जोगु लएविणु मुणिवर जेम ॥ 9 ॥

जल वाणासणि घायहिं [(जल) (वाणासण (स्त्री) → वाणासणी → वाणासणि<sup>1</sup>) - (घाय) 3/2] घाइड (घाय = वाअ → घाइअ) भूक 1/1 गिम्भ-नराहिउ [(गिम्भ) - (नराहिअ) 1/1] रणो (रण) 7/1 विणिवाइउ (विणिवाइअ) भूक 1/1 अनि, (1)

1. समास में रहे हुए स्वर परस्पर में ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व अक्सर हो जाया करते हैं। (हेम प्रा. व्या. 1-4)।

दद्दुर (दद्दुर) 1/2 रडे (रड) 7/1 वि (अ) = इसलिए लग (लग) भूक 1/2 अनि णं (अ) = की तरह सज्जण (सज्जण) 1/2 णच्चन्ति (णच्च) व 3/2 अक मोर (मोर) 1/2 खल (खल) 1/2 वि दुज्जण (दुज्जण) 1/2 वि, (2)

णं(अ) = मानो पूरन्ति (पूर) व 3/2 सक सरिउ (सरि) 1/2 आक्कन्दे (आक्कन्द) 3/1 कइ (कइ) 1/2 किलकिलन्ति (किलकिल) व 3/2 अक आणन्दे (आणन्द) 3/1, (3)

णं (अ) = मानो परहुय (परहुय) 1/2 विमुक्क (विमुक्क) भूक 1/2 अनि उगघोसे<sup>1</sup> (उगघोस) 3/1 वरहिण (वरहिह) 1/2 लवन्ति (लव) व 3/2 सक परिओसे (परिओस) 3/1, (4)

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हे. प्रा. व्या. 3-137)।

णं (अ) = मानो सरवर [(सर) - (वर) 1/2 वि] बहु-अंसु-जलोल्लिय [(वहु) वि - (अंसु) - (जल) - (उल्लिय) 1/2 वि] गिरिवर [(गिरि) - (वर) 1/2 वि] हरिसे (हरिस) 3/1 गज्जोल्लिय (गज्जोल्लिय) 1/2 वि, (5)

णं (अ) वाक्यालंकार उण्ह (उण्ह) 6/1 वि विअ (अ) = मानो दवगिग (दवगिग) 6/1 विअोएं (विअोअ) 3/1 णं (अ) = वाक्यालंकार णच्चिचय (णच्च) भूकृ 1/1 महि (महि) 1/1 विविह-विणोएं [(विविह) वि-(विणोअ) 3/1]

ण (अ) = मानो अत्थमिउ (अत्थमिअ) 1/1 वि दिवायर (दिवायर) 1/1 दुख्लें (दुख) 3/1 णं (अ) = मानो पइसरइ (पइसर) व 3/1 अक रयणि (रयणि) 1/1 सइं = सइं (अ) = स्वयं सुख्लें (सुख) 3/1

रत्त-पत्त [(रत्त) भूकृअनि-(पत्त) 1/2] तरह(तरह) 6/1 पवणाकम्पिय [(पवण) + (आकम्पिय)] [(पवण)-(आकम्पिय) भूकृ 1/1] केण (क) 3/1 स वि (अ) = पादपुरक वहिउ (वह→वहिअ) → भूकृ 1/1 गिम्भु (गिम्भ) 1/1 णं (अ) = मानो जम्पिय (जम्प→जम्पिय) भूकृ 1/1

तेहए (तेहअ) 7/1 वि 'अ' स्वार्थिक काले (काल) 7/1 भयाउरए [(भय) + (आउ-रए)] [(भय)-(आउरअ) 7/1 वि 'अ' स्वार्थिक] वेणिण (वे) 1/2 वि मि(अ) = ही वासुएव-वलएव [(वासुएव)-(वलएव) 1/2] तरवर-मूले [(तर)-(वर) वि-(मूल) 7/1] स-सीय [(स) वि-(सीया) 1/1] थिय (थिय) भूकृ 1/2 जोगु (जोग) 2/1 लएविणु (लअ + एविणु) संकृ मुणिवर [(मुणिण)-(वर) 1/1 वि] जेम (अ) = की भाँति

जलरूपी तीरों के प्रहारों से चोट पहुंचाया हुआ ग्रीष्म राजा युद्ध में (मार कर) नीचे गिरा दिया गया (1) । इसलिए मेंढक सज्जनों की तरह रोने लगे और शरारती मोर दुष्टों की तरह नाचे (2) । (ऐसा प्रतीत हो रहा था) मानो रोने के कारण नदियों ने (अपने को) (आँसू रूपी जल से) भरा हो (और) मानो (वर्षा से प्राप्त) आनन्द के कारण कवि प्रसन्न हुए हों (3) । मानो कोयलें ऊँची आवाज में (बोलने के लिए) स्वतन्त्र की गई (हों) (और) मानो मोर संतोष के कारण बोले हों (4) । मानो बड़े तालाब विपुल आँसूरूपी जल से भरे हुए (हों और) मानो बड़े पर्वत हर्ष के कारण पुलकित (हों) (5) । मानो दावाग्नि के वियोग से धरती विविध विनोद के कारण नाची (हो) (6) । मानो दुःख के कारण सूर्य अस्त हुआ हो (और) मानो सुख के कारण रात स्वयं व्याप्त हो गई हो (7) । वृक्ष के पत्ते सुहावने हुए (और) पवन से हिले-डुले, मानो (उनके द्वारा) (यह) बोला गया (है) (कि) ग्रीष्म किसके द्वारा नष्ट किया गया (है) (8) ?

उस जैसे समय में दोनों ही भयातुर राम और लक्ष्मण सीता के सहित (उस) बड़े वृक्ष के मूल भाग में योग ग्रहण करके महामुनि की भाँति बैठ गये (9) ।

### संकेत सूची

(अ) — अव्यय (इसका अर्थ = लगाकर लिखा गया है)

अक — अकर्मक क्रिया

अनि — अनियमित

आज्ञा — आज्ञा

कर्म — कर्मवाच्य

(क्रिविअ) — क्रिया विशेषण अव्यय (इसका अर्थ = लगाकर लिखा गया है)

तुवि — तुलनात्मक विशेषण

पु०	—पुल्लिग
प्रे	—प्रेरणार्थक क्रिया
भकृ	—भविष्य कृदन्त
भवि	—भविष्यत्काल
भाव	—भाववाच्य
भू	—भूतकाल
भूकृ	—भूतकालिक कृदन्त
व	—वर्तमानकाल
वकृ	—वर्तमान कृदन्त
वि	—विशेषण
विधि	—विधि
विधिकृ	—विधि कृदन्त
स	—सर्वनाम
संकृ	—सम्बन्धक कृदन्त
सक	—सकर्मक क्रिया
सवि	—सर्वनाम विशेषण
स्त्री	—स्त्रीलिंग
हेकृ	—हेत्वर्थ कृदन्त

( ) — इस प्रकार के कोष्ठक में मूल शब्द रक्खा गया है।

[( ) + ( ) + ( )....]

इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर + चिन्ह किन्हीं शब्दों में संधि का द्योतक है। यहां अन्दर के कोष्ठकों में गाथा के शब्द ही रख दिए गए हैं।

[( ) — ( ) — ( )....]

इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर '—' चिन्ह समास का द्योतक है।

जहां कोष्ठक के बाहर केवल संख्या (जैसे 1/1, 2/1....आदि) ही लिखी है वहां उस कोष्ठक के अन्दर का शब्द 'संज्ञा' है।

जहां कर्मवाच्य, कृदन्त आदि अपभ्रंश के नियमानुसार नहीं बने हैं वहां कोष्ठक के बाहर 'अनि' भी लिखा गया है।

1/1 अक या सक — उत्तम पुरुष/  
एकवचन

1/2 अक या सक — उत्तम पुरुष/  
बहुवचन

2/1 अक या सक — मध्यम पुरुष/  
एकवचन

2/2 अक या सक — मध्यम पुरुष/  
बहुवचन

3/1 अक या सक — अन्य पुरुष/  
एकवचन

3/2 अक या सक — अन्य पुरुष/  
बहुवचन

1/1—प्रथमा/एकवचन

1/2—प्रथमा/बहुवचन

2/1—द्वितीया/एकवचन

2/2—द्वितीया/बहुवचन

3/1—तृतीया/एकवचन

3/2—तृतीया/बहुवचन

4/1—चतुर्थी/एकवचन

4/2—चतुर्थी/बहुवचन

5/1—पंचमी/एकवचन

5/2—पंचमी/बहुवचन

6/1—षष्ठी/एकवचन

6/2—षष्ठी/बहुवचन

7/1—सप्तमी/एकवचन

7/2—सप्तमी/बहुवचन

8/1—संबोधन/एकवचन

8/2—संबोधन/बहुवचन

# स्वयंभू की भाषा-शब्द-सम्पदा

—प्रो. कैलाशचन्द्र भाटिया

□

अपभ्रंश भाषा के इतिहास में महाकवि स्वयंभू का अप्रतिम स्थान है। निर्विवाद रूप से अपभ्रंश के सर्वश्रेष्ठ कवि स्वयंभू हैं। आप महाकवि, कविराज, कविराज चक्रवर्ती जैसी उपाधियों से विभूषित थे। स्वयंभू को जहाँ अपभ्रंश का प्रथम महाकवि होने का श्रेय है वहाँ सर्वाधिक यशस्वी कवि रहे हैं। महापंडित राहुल सांकृत्यायन जैसे विद्वान् ने स्वयंभू को हिन्दी का प्रथम कवि एवं पउमचरिउ को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य स्वीकार किया है। संस्कृत काव्य-गगन में जो स्थान कालिदास का है, हिन्दी में तुलसीदास का है, प्राकृत में जो स्थान हाल ने प्राप्त किया, अपभ्रंश के सारे काल में स्वयंभू वही स्थान रखते हैं। डॉ. नामवर सिंह तो स्वयंभू को अपभ्रंश का वाल्मीकि मानते हैं। अपभ्रंश को साहित्यिक भाषा के रूप में मान्यता उनके ग्रंथों-पउमचरिउ, रिट्ठरोमिचरिउ, तथा स्वयंभूछन्द से मिली जिनमें मानव-जीवन का बड़ा स्वाभाविक, रसपूर्ण, मनोहारी तथा हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है। जनभाषा के स्तर से उठाकर इस भाषा को महाकाव्य के स्तर तक पहुंचाने का श्रेय स्वयंभू को ही है।

विद्वान् याकोबी ने 'भविसयत्तकहा' में कहा कि उस समय अपभ्रंश एक मिश्रित भाषा थी जिसमें शब्दकोश का अधिकांश साहित्यिक प्राकृतों से ग्रहण किया गया और व्याकरणिक गठन देश्य भाषाओं से। शब्दावली भी देश्य ग्रहण की गई जिसपर संक्षिप्त विवेचन बाद में प्रस्तुत करेंगे। राहुलजी ने उसी तथ्य को प्रकारान्तर से इस प्रकार कहा कि अपभ्रंश ने नये सुबन्तों और तिडन्तों की सृष्टि की। ऐसी उस युग की विकसनशील भाषा को पूर्णतः



विकसित करने का श्रेय स्वयंभू को है। डॉ. भायाणी ने भी स्वयंभू की भाषा की व्याकरणिक संरचना का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया।

शब्दों के रूपों में तत्कालीन ध्वनि प्रक्रिया का प्रभाव पड़ा है, जैसे—

न	के स्थान पर	ण	— नारायण	— णारायण
ज्ञ	के स्थान पर	ण	— ज्ञान	— णाण
म	के स्थान पर	व	— हरिदमन	— हरिदवण
			— प्रणाम	— पणवेप्पिणु
इसका विपरीत भी	व के स्थान पर	म	— परिवृत्त	— परिमिय
			— सिविर	— सिमिर

इस प्रकार 'णकार' युक्त शब्दों की भरमार मिलती है—

आदि	—	णर, णारायण, णीसरन्त
मध्य	—	विण्णि, भिण्ण, पहाणोहि
अन्त	—	संघारण, भिण्ण

संधि होकर भी नये शब्दरूप बन गये हैं—

ण + आयउ	=	णायउ (न आया)
		जइ पुणु कहवि तुल लग्गे णायउ ।
ण + आवमि	=	णावमि (न आऊँ), जइ एम वि णावमि ।
ण + आणमि	=	णाणमि (न लाऊँ),
		जइ णाणमि तो सत्त मए दिणे।

इस प्रकार न (नकारात्मक) युक्त शब्दरूप पर्याप्तरूप में प्रचलित हो गये। पर यह प्रवृत्ति अन्य शब्दरूपों में भी मिलती है, जैसे—

पडल + ओवरे	=	पडलोवरे (पटल के ऊपर)
		चामीयर-पडलोवरे
अवर + एक्कु	=	अवरेक्कु (ऊपर एक)
		अवरेक्कु ररांगणे दुज्जयासु ।
पर + आइउ (व)	=	पराइउ (व) (पर आये)
		सिद्धत्थु पराइउ ।
किंचित् + उट्ठओ	=	किंचिदुट्ठओ (किंचित् उठा हुआ)
		विहि वि किंचिदुट्ठओ ।
कत् + दिवसु	=	कदिदवसु (किसी न किसी दिन)
		कदिदवसु वि अवस पयाणउ ।

संधि की इस वृत्ति से तथा आंतरिक स्वरों की संधि से नये-नये शब्दों का विकास हुआ।

संस्कृत में जिस प्रकार विशेषणों के रूप भी विशेष्य के अनुसार होते थे उसी प्रकार स्वयंभू के काव्य में रूप विकसित हुए, जैसे—

आसंकिय—मरोगा के अनुसार विहीसरोगा

इस प्रकार की नई शब्दावली के साथ-साथ सूक्तियाँ भी विकसित हुईं, जैसे—

जइ णासइ सियालु विवराणणु ।

तो कि तहों रूसई वंचाणणु ॥

(यदि शृगाल गुफा का मुख नष्ट कर दे तो क्या इससे सिंह रुष्ट होता है ?)

अपभ्रंश के सुधी विद्वान् डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन के अनुसार 'लिखी गई भाषा से जब बोली गई भाषा दूर जा पड़ती है तो उसमें स्थिरता और गतिशीलता, मानक और देशी तत्त्वों का प्रश्न पैदा होता है। मानकीकरण के बावजूद भाषा आगे बढ़ती है और देशीकरण प्रदेशीकरण में बदलता है।'

स्वयंभू के काव्य में कुछ ठेठ शब्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है—

**ढोर** — 'ढोर' का प्रयोग तुलसी ने भी "ढोर पशु नारी" में स्पष्ट किया है। अच्छे बैल के लिए 'धवल' का प्रयोग मिलता है। मराठी में 'ढवल' प्रयोग में आता है। स्वयंभू के दुब्ल ढोरइं पंकेइव (पंक-कीचड़ में फंसे ढोर की तरह)। सफेद बैल को भी धौर-धौरा कहते हैं। डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन ने इसकी व्युत्पत्ति स्वीकार की है  
धवल > धउर > धोर > ढोर।

**डोल** — डोल तथा डोल हिलने के अर्थ में आता है। हिन्दी में डोलना की जगह हिलना प्रयोग में आता है।

**भीना**— 'भीना' कम घने के लिए प्रयोग में आता है। कबीर ने भी 'भीनी भीनी बीनी चदरिया' लिखा है। स्वयंभू ने भी प्रयोग किया है—

भीणउ दुराउलेण वरदेसु व

(दुष्ट राजकुल से जैसे सुन्दर देश क्षीण हो जाता है वैसे ही सीता के वियोग में राम हैं।)

इस प्रकार 'भीण' का ही दूसरा रूप 'भीना' मिलता है।

स्वयंभू के समक्ष अपभ्रंश का कोई आदर्श नमूना नहीं था। स्वयंभू ने भावप्रकाशन की क्षमता अपभ्रंश भाषा में बढ़ाई, उसे क्षमताभरी बनाया। युद्ध-वर्णन में भाषा का वेग प्रचंड बरसाती नदी की भांति तो शृंगारवर्णन में मंथर-मंथर गति से प्रवाहित धारा की भांति। अपभ्रंश की सरलता पर वह स्वयं मुग्ध है और सहज रूप में उसको गति प्रदान करता है। यह सहजता ही उसकी परम विशेषता है।

## सीलु जे मण्डणउ

.....दोच्छिउ रावणु राहव-भज्जएँ ।  
 'केत्तिउ गियय-रिद्धिमहु दावहि, अप्पउ जणहो' मज्जे दरिसावहि ।  
 एउ जं रावण रज्जु तुहारउ, तं महु तिण-समाणु हलुआरउ ।  
 एउ जं पट्टणु सोमु सुदंसणु, तं महु मणहो णाइं जमसासणु ।  
 एउ जं राउलु रायण-सुहंकरु, तं महु णाइं मसाणु भयंकरु ।  
 एउ जं दावहि खणे जोव्वणु, तं महु मणहो णाइं विस-भोगणु ।  
 एउ जं कण्ठउ कडउ स-मेहलु, सील - विहरणहँ तं मलु केवलु ।  
 रहवर-तुरय-गइन्द-सयाइ मि, आर्यहि मसु पुणु गणु ण काइ मि ।  
 घत्ता—सग्गेण वि काइँ जहिँ चारित्तहोँ खण्डणउ ।  
 किं समलहणेण महु पुणु सीलु जे मण्डणउ ॥

—रामपत्नी (सीता) ने रावण की भर्त्सना की—तुम अपनी कितनी ऋद्धि मुझे दिखाते हो ? इसे (तो) अपने लोगों के बीच दिखाओ । हे रावण ! तुम्हारा यह राज्य मेरे लिए तिनके के समान तुच्छ है । तुम्हारा यह सौम्य-सुदर्शन नगर है वह मेरे लिए यमशासन के समान है । यह नेत्रों के लिए आनन्दकर राजकुल वह मेरे लिए भयंकर श्मशान के समान है । (तुम) जो क्षण-क्षण में अपना यौवन दिखाते हो वह मानो मेरे मन के लिए विष-भोजन है । ये कण्ठा, कड़ा, मेखला आदि आभूषण हैं ये शील-आभूषणवालों के लिए केवल मल है । सैंकड़ों रथ, घोड़े, हाथी (ये सब तुम्हारा वैभव) मेरे लिए मान्य (गिना-माना जाने योग्य) नहीं है ।

उस स्वर्ग से भी क्या (लाभ) जहां चारित्र्य का खण्डन हो । मेरे पास शील का मण्डन (आभूषण) है फिर कुछ (अन्य) प्राप्त करने से क्या (लाभ) ?

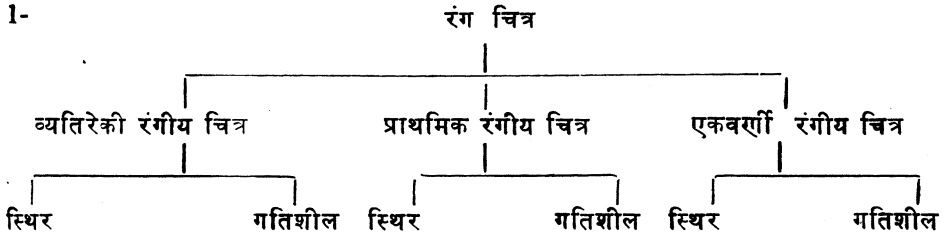
# पञ्चमचरित के काव्यचित्र

—डॉ. सुषमा शर्मा

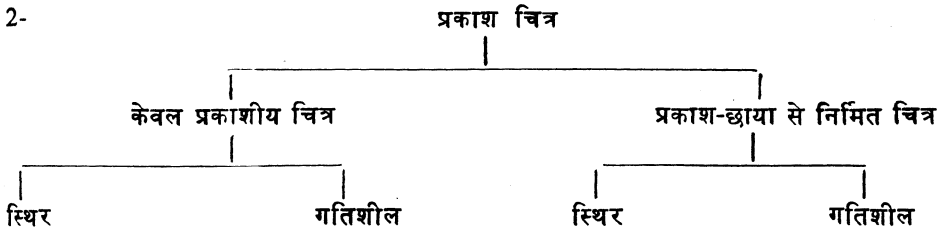


सामाजिक भाषा का सम्प्रयोजन सम्प्रेषण है लेकिन काव्य की भाषा का प्रभान्विति है। इसे ही भाव-योग या साधारणीकरण कहा गया है। यह प्रभाव जब मूर्त होता है तब इन्द्रियों का विषय होता है। इन्द्रियों में सर्वप्रमुख हैं नेत्र और श्रोत्र। अतः काव्य में चाक्षुष चित्र और नाद चित्र विशेष महत्त्व के होते हैं। पञ्चमचरित में ये दोनों ही प्रकार के चित्र मिलते हैं। इन चित्रों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—

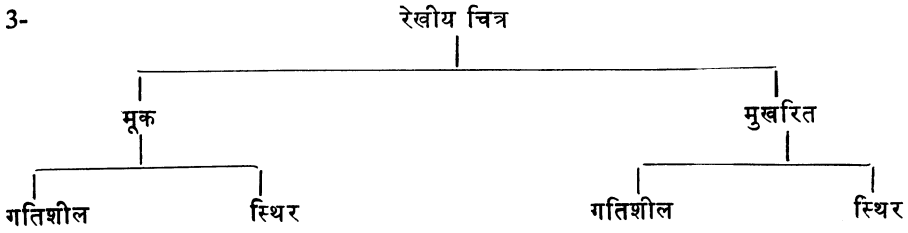
1-



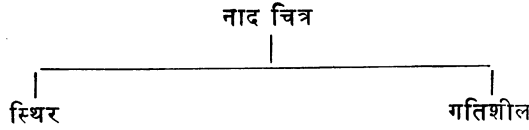
2-



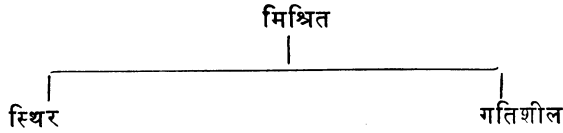
3-



4-



5-



## 1. रंग चित्र

### अ-व्यतिरेकी रंगीय गतिशील चित्र

चित्रों में व्यतिरेकी रंगों की संयोजना का महत्त्व यह है कि एक रंग दूसरे रंग की चटक को उभारता है। ऐसे ही कुछ रंग चित्र यहां प्रस्तुत हैं—

दीसइ णासइ विप्पुरइ परिभइ चउदिसु कुंजरहोँ ।

चलु लबिखज्जइ गयण-यलेँ णं विज्जु-पुंजु णव जलहरहोँ ।<sup>1</sup>

यह एक ऐसा चित्र है जिसकी रेखाएँ गति-चक्र में विलीन हो गई हैं और गति की तीव्रता के कारण रह गए हैं केवल रंग। आकाश के नीचे काला हाथी गोल घेरे में चक्कर काट रहा है और उसके चारों ओर रावण घूम रहा है। इस गति से तीन रंग उभरते हैं— आकाश का नीलापन लिये हुए सफेद रंग, उसमें घुमड़ते काले बादल और काले बादलों के बीच और कभी आस-पास बिजली की सुनहली कौंध। सब कुछ गतिमय है। इसी से कभी कहीं काला रंग चमकता है और कभी उसके बीच में और कभी इधर-उधर सुनहला प्रकाश कौंध जाता है। सफेद फलक पर काला रंग और काले की पृष्ठभूमि में सुनहला रंग सभी एक दूसरे की चटक को उभार रहे हैं और गति इनको एक विशेष चमक और झिलमिलाहट दे देती है।

इसी प्रकार व्यतिरेकी रंगों की चटक लिये एक भव्य चित्र उस समय उभरता है जब रेवा नदी में सहस्रकिरण और उसके अन्तःपुर की जलक्रीड़ा का दृश्य सामने आता है.....

अत्रोप्पह जल-कील करन्तहुँ । धण - पाणालि-पहर मेल्लन्तहुँ ॥

कहि मि चन्द-कुन्दुज्जल-तारेँहिँ । धवलिउ जलु तुट्टन्ततेँहिँ हारेँहिँ ॥

कहि मि रसिउ णउरेँहिँ रसन्तेहिँ । कहि मि फुरिउ कुण्डलेँहिँ फुरन्तेहिँ ॥

कहि मि सरस तम्बोलारत्तउ । कहि मि वडल-कायम्बरि-मत्तउ ॥  
 कहि मि फलिह कप्पूरेहिं वासिउ । कहि मि सुरहि मिगमय वामीसिउ ॥  
 कहि मि वहल-कुडकुम-पिञ्जरिउ । कहि मि मलय-चन्दण रस भरियउ ॥  
 कहि मि जक्खकहमेण करम्बिउ । कहि मि भमर रिंछोलिहि चुम्बिउ ॥  
 विद्दुम - मरबय इन्दणील - सय - चामियर - हार - संघाएँहिं ।  
 बहु-वणुज्जलु णावइ णहयलु सुरघणु - घण विज्जु वलायहिं ॥<sup>2</sup>

रमणियों का छूटा हुआ काजल, सुगन्धित चूर्ण के धुल जाने से जल पर मंडराते भ्रमरदल आकाश में स्थित मेघों की भांति कलौंहे हैं, कहीं गिरे हुए मणिमय आभूषणों के लाल, हरे, नीले, सुनहरे रंग तो कहीं केसर आदि चूर्ण से पीले पड़े जल में मानो इन्द्रधनुष ही उतरा है। चन्द्रमा और कुन्द पुष्पों से हुए शुभ्र निर्मल जल में बिजली की कौंध है और टूटे-गिरे मोतियों के हारों में उड़ती बगुलों की पांति की धवलता और गति का भ्रम। नदी भी सजधज गई है। इन्द्रधनुष, मेघ, बिजली और बगुलों के साथ आकाश ही नदी में उतर आया है। इस पूरे रंग-चित्र की विशेषता यह है कि किसी भी रंग का नाम कहीं नहीं लिया गया, केवल रंग के साथ जुड़ी विशिष्ट वस्तु की सहज उपस्थिति से ही रंगों की योजना है। व्यतिरेकी और प्राथमिक रंगों की सन्निधि है अतः चटक और चमक सामान्य से अधिक उत्तेजक है। वह इतनी अधिक है कि वस्तुओं की रेखाएँ कहीं रह ही नहीं जाती, रह जाते हैं कुछ रंग और प्रकाश और उनकी कौंध। इस प्रकार नदी के रूप में धरती-आकाश एक हो गए हैं 'छिति, जल, पावक, गगन और समीर' सभी अभिन्न।

**व्यतिरेकी रंगीय स्थिर चित्र**—कवि ने व्यतिरेकी रंगों की सन्निधि के सौंदर्य को केवल गति में ही नहीं पकड़ा है, स्थिर चित्रों में भी उनकी चटक बिखेरी है। एक ऐसा स्थिर चित्र कवि ने उस समय प्रस्तुत किया है जब वह वन में रावण के अन्तःपुर का वर्णन करने में दत्तचित्त है—

तं तेहउ रावण - केरउ अन्तेउरु संचल्लियउ ।  
 एणं सभमरु माणस-सरवरे कमल्लिण वणु पप्फुल्लियउ ॥

सीता के पास वन में रावण का अन्तःपुर चल कर आया है। सभी पास-दूर की चुनी हुई सुन्दरियां हैं, गौर वर्ण है, शृंगार की दीप्ति एवं हाव-भाव से युक्त हैं।

उनके मुखमण्डल रक्तिम आभा से युक्त हैं। खाने-पीने और बड़े होने की एक निराली चमक है। उनके चेहरे खिले हुए हैं, स्निग्ध और कोमल हैं। मुख के आस-पास अलकें बिखरी हुई हैं। रानियां दुग्ध-धवल मोतियों के बने हार-दोर पहने हैं। मोतियों की दुग्ध धवलिमा में सफेद-स्वच्छ मानसरोवर की भ्रान्ति उत्पन्न हो रही है। पूरा चित्र इस प्रकार उभरता है— दुग्ध-धवल जलवाले मानसरोवर में लाल कमल खिले हैं जिन पर रसपान के लिए काले भौरे मंडरा रहे हैं। इन रंगों में शृंगार की एक तरलता घुली हुई है। लाल, काले और सफेद रंग से बने इस चित्र में प्राथमिक रंगों की चमक है और व्यतिरेक की चटक भी।

इसी प्रकार कवि ने संध्या के माध्यम से सृष्टि या शून्य के विराट् चित्र का निर्माण तब किया है जब वह हनुमान के द्वारा विध्वंस प्रक्रम के वर्णन में रमा है—

तं एवड्डु दुक्खु पेक्खेप्पिणु, रवि अत्थमिउ राइँ असहेप्पिणु ॥  
 अहवइ एह-पायवहोँ विसालहा, सयल-दियन्तर-दीहर-डालहोँ ॥  
 उवदिस-रड्खोलिर - उवसाहहोँ, सञ्भा-पल्लव-णियर - सगाहहोँ ॥  
 बहुवव अम्भ-पत्त-सच्छायहोँ, गह-णक्खत्त - कुसुम - संड्घायहोँ ॥  
 पसरिय-अन्धयार-भमर-उलहोँ, तहो आयास-दुमहोँ वर-विउलहोँ ॥  
 गिगिसि-गारिँ खुड्डेँ वि जस लुद्धेँ रवि फलु गिलिउ णाईँ गियसद्धेँ ॥  
 वहल-तमालेँ जगु अन्धारिउ, विहि मि बलहँ एणं जुज्झु णिवारिउ ॥  
 वे वि बलइँ वरा-णिसुद्धिय-गत्तइँ, णिय-गिय-आवासहोँ परियत्तइँ ॥<sup>4</sup>

रवि अस्त हो गया। आकाश एक विशाल वट-पादप है, दिशाएँ जिसकी लम्बी-लम्बी डालें हैं, उपदिशाएँ जिसकी शाखाएँ हैं और संध्या जिसके पल्लव है, बादल जिसके पत्ते हैं, ग्रह-नक्षत्र जिसके कुसुम हैं, अन्धकार भ्रमरकुल है, इसमें वृक्ष की विराटता है, कोयलों में संध्या की लालिमा है और बादलों में पत्तों का रंग, चमकीले ग्रह-नक्षत्रों में विविध फूलों की आभा है। अन्धकार के कालेपन से भ्रमरों का कालापन एकीकृत है। इस तरह यह पूरा चित्र लाल, काले, हरे और चमकीले सफेद-रंग से मिल कर बना है। व्यतिरेकी रंग एक आश्रय में अंगांगी भाव से जुड़े हैं और एक विराट् चित्र का सृजन करते हैं। सृष्टि का एक ऐसा ही विराट् चित्र गीता के पन्द्रहवें सर्ग में मिलता है जहां कहा गया है—“हे अर्जुन, आदिपुरुष परमेश्वररूप मूलवाले और ब्रह्मरूप मुख्य शाखावाले संसाररूपी पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं तथा वेद जिसके पत्ते कहे गए हैं उस संसाररूपी वृक्ष को मूलसहित तत्त्व से जानता है वह वेद के तत्त्व को जाननेवाला है। और हे अर्जुन! उस संसार की गुणरूप जलद्वारा बढी हुई एवं विषयभोगरूप कोयलोंवाली देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्य योनि में कर्मों के अनुसार बांधनेवाली अहंता, ममता और वासना रूप जड़े भी ऊपर और नीचे सभी लोकों में फैली हैं ॥”<sup>5</sup>

**प्राथमिक रंगीय स्थिर चित्र**—चित्रों में प्राथमिक रंगों का अपना ही महत्त्व है। ये मूल रंग हैं, अपने आप में शुद्ध। किन्हीं रंगों के मिलने से ये नहीं बनते। इनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है और एक दूसरे में घुल-मिलकर अनेक रंग बनाते हैं जो द्वितीय रंग कहलाते हैं। घुल-मिलकर नए द्वितीय रंग में भी इनकी चमक तिरोहित नहीं होती। अतः चित्रों में इन रंगों की संयोजना का सौंदर्य यह है कि ये परस्पर एक दूसरे की चटक को उभारते हैं, अपनी चमक और चटक में कोई कमी नहीं आने देते हैं, साथ ही अपने द्वितीय रंग की आभा भी चारों ओर छिटकाते हैं। कवि स्वयंभू की सौंदर्य-चेतना ने इस सौंदर्य को पकड़ा है और चित्रों में रूपायित किया है जहां दर्शनिक संकेत और काव्यात्मक अर्थ एकीकृत हो गए हैं—

केककय-सुएण णमंतएँण सिरु रहुवइ-चलरांतरे-कियउ ।

बीसइ विहिँ रत्तुप्पलहेँ णोलुप्पलु मज्जे राइँ थियउ ॥<sup>6</sup>

प्राथमिक रंगों से निर्मित यह चित्र उस समय उभरता है जब भरत राम के चरणों में सिर झुका कर नमन करते हैं। राम के चरण लाल हैं और केशपाश से आच्छादित सिर श्याम। लाल चरणों पर रखा हुआ सिर ऐसा प्रतीत होता है मानो दो लाल कमलों के बीच एक नीला कमल खिला हो [साहित्य में नीला और काला समान रंग माने जाते हैं]। इससे कविसमय की भी पूर्ति हो गई है कि सिर और चरण दोनों ही कमल से उपमित हैं और साथ ही रंग साम्य भी है। साथ ही दार्शनिकता का रूप भी उभर आया है—आस्था और अनुराग में सब समान हो गया है।

एक अन्य चित्र प्राथमिक रंगों की संयोजना से उस समय उभरता है जब रक्त से रंजित एक योद्धा का दृश्य सामने आता है। योद्धा के वक्ष में बाण केवल प्रविष्ट ही नहीं हैं, बल्कि छाती फोड़कर दूसरी तरफ निकल गए हैं जहां वे ईषत् उठे हुए दीख रहे हैं। योद्धा रक्त से रंजित है और बाण काला है अतः वह काला भ्रमर जैसा दीख पड़ता है और रक्त से रंजित वक्षस्थल लाल कमल-समूह जैसा प्रतीत होता है। रक्तिम आभा से युक्त गहरे चटक लाल रंग के कमल खिले हैं और फूलों पर भ्रमर रस-पान के लिए ठहरे हुए हैं। इस प्रकार यह चित्र काले और लाल रंग से पूरा होता है। दोनों रंग अपनी-अपनी चटक और दीप्ति लिये हैं, एक दूसरे को भी उद्दीप्त कर रहे हैं और एक अन्य रंग की आभा भी विकीर्ण कर रहे हैं।

**एकवर्णी रंगीय चित्र**—व्यतिरेकी और प्राथमिक रंगों से निर्मित चित्रों के अतिरिक्त पउमचरिउ में एकवर्णी तकनीक से निर्मित रंग चित्र भी मिलते हैं, यथा—

विबभम-हाव-भाव-भू भङ्गरच्छराइं । जायइं सुर-विमाणइं धूलिधूसराइं ॥  
 ताव हेइ-घट्टणेष करालउ । उच्छलियउ सिहि-जाला-मालउ ॥  
 सिवियहिं छत्त-घएँहिं लगन्तिउ । अमर-विमाण सयाइं वहन्तिउ ॥  
 पुणु पच्छले सोणिय-जल धारउ । रय पसमणउ हुआस-णिवारउ ॥  
 ताहिं असेसु विसामुहु सित्तउ । थिउ एहु णाईं कुसुम्मएँ घित्तउ ॥  
 अण्णउ परियत्तउ गयणङ्गहो । णं घुसिणोलिउ णह-सिरि-अङ्गहो ॥  
 जय वसुन्धरि रहिरायम्भरि । सरहस-मुहड-कबन्ध-पणच्चरि ॥  
 करि-सिर-मुत्ताहलेहिं विमोसिय । संभ व ताराइण्ण पदीसीय ॥<sup>7</sup>

युद्ध क्षेत्र में छत्र पताकाएँ-पालकियाँ आदि जल रहे हैं, आग की कराल लपटें उठी हैं। युद्ध-भूमि रक्तपात से लाल है। धूल उड़ रही है। गज-मोती बिखरे पड़े हैं। यह दृश्य संध्या के चित्र में रूपायित होता है जो एकवर्णी तकनीक के आधार पर एक लाल रंग के विविध आभाभेदों की संयोजना से निर्मित है—पीत आभा लिये आग का लाल रंग, रक्त का गहरा चमकदार लाल रंग, मटमैला लाल रंग, कुसुम्भ व कुमकुम का लाल रंग, ये सब आभा-भेद संध्या का चित्र बनाते हैं जो कल्पना के सादृश्य में कौंधते हैं। लाल रंग प्राथमिक रंग भी है जो अपनी मूल चटक और चमक को बनाए रहता है और अनेक अन्य रंग-छवियों को भी बिखेरता रहता है। इस एकवर्णी तकनीक से चित्र में दृक् की व्यापकता, काल की गति,



प्रकाश व छाया आदि संश्लिष्ट रूप में संवेद्य हुए हैं। लालिमा की इस पृष्ठभूमि में श्वेत चमकते गज—मोती तारों से भरी संध्या का चित्र ही पूरा नहीं कर देते हैं, उसे दीप्ति भी देते हैं और अधिक गहरा व चटकीला भी बना देते हैं।

### 3. रेखीय चित्र—

#### रेखीय गतिशील मूक चित्र

सण्णहेँवि पुरन्दरु णिगउ अइरावएँ चडिउ ।  
णं विज्भहोँ उप्परि सरय—महाघणु पायडिउ ॥<sup>8</sup>

‘पउमचरिउ’ के कम ही चित्र रेखीय हैं, प्रायः मिश्रित ही मिलते हैं। उक्त चित्र की प्रमुख रेखाएँ ऊँचाई और विस्तार संबंधी हैं, साथ ही भौतिकी की गति के नियम से जुड़ी हैं। आकाश को छूता ऊँचा, चारों ओर फैला, वनस्पति से भरा विन्ध्याचल पर्वत है। रंग भी उसका काला है। उस पर शरद के धवल-धूसरित बादल मंद-मंथर गति से आ-जा रहे हैं। बादलों की गति ने पर्वत को भी गति प्रदान कर दी है। इनमें आभिजात्य घुला-मिला है और प्रभाव के रूप में छिटका पड़ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऊँचे फैले और काले हाथी पर इन्द्र बैठा हो। इन्द्र ऐश्वर्य का प्रतीक है, प्रशासन और संरक्षण का अर्थात् आभिजात्य का। रेखाएँ काले और श्वेत रंग में उभरी हुई हैं और वक्र हैं।

#### रेखीय मुखरित गतिशील चित्र

पहन्तरेँ भयङ्करो । भसाल—छिण्ण—कक्करो ॥  
वलो व्व सिङ्ग—दीहरो । गियच्चिअो महीहरो ॥  
कहिँ जेँ भीम—कन्दरो । भरन्त—णीर—णिज्भरो ॥  
काँह जि रत्तचन्दणो । तमाल — ताल—वन्दणो ॥  
काँह जि दिट्ठ—छारया । लवन्त मत्त — मोरया ॥  
काँह जि सीह—गण्डया । धुणन्त-पुच्छ - वण्डया ॥  
काँह जि मत्त—णिभरा । गुलुगुलन्ति कुंजरा ॥  
काँह जि पुच्छ—दीहरा । किलिकिलन्ति वाणरा ॥  
काँह जि थोर—कन्धरा । परिभमन्ति सम्बरा ॥  
काँह जि तुङ्ग—अङ्गया । हयारि — तिक्खसिङ्गया ॥  
काँह जि आरणुणया । कुरङ्ग वुण्ण—कणया ॥<sup>9</sup>

चित्र वंशस्थल के पर्वत का है। इस में सूक्ष्म-स्थूल रेखाएँ हैं, विविध नैसर्गिक ध्वनियाँ हैं और एक संश्लिष्ट गति है। प्रकृति का आयाम ही इसके द्वारा विस्तृत हुआ है, गहराई भी बढ़ी है, स्वच्छन्दता और विविधता भी उभरी है। हिंस्र जीवों के विशेषण ‘दीहरा’, ‘थोर’, ‘तुंग’, ‘तिक्ख’ [लम्बा, स्थूल, तीखा, ऊँचा] पर्वत के अंग बन गए हैं—इस प्रकार दोहरे हो एक हैं और भौतिकी के द्रव्यमान की अवधारणा पूरी करते हैं। शिखर ऊँचे शृंगों में ही नहीं दीख पड़ते, पूरा पर्वत ही वनैला पशु हो गया है। इस तरह पर्वत में पशुभाव और

पशुओं में पदार्थभाव के आयातों के आभास ने उन्हें एक बना दिया है—अविभाजित और पूर्ण। हाथियों की गुल्गुलाहट, सुअरों की घुरघुराहट, बन्दरों की किलकिलाहट, भरनों की भरभराहट, मोरों की केका और सिंहों की पूँछों की फटकार ने समूचे पर्वत को भयंकर ध्वनि से भर दिया है कि पर्वत का हर भाग बोलता, दहाड़ता, डराता प्रतीत होता है। चित्र के उपसंहार में हिरन की अप्रस्तुत दौड़ को दो रेखाओं में समेट लिया गया है—उनके कान खड़े हैं, मुंह लटका है मानो वे भी भीत-त्रस्त हैं। अंश की गति सम्पूर्ण को गतिशील बना देती है जिसमें फिर रेखा और शब्द अलग नहीं रह जाते।

### रेखीय मूक स्थिर चित्र

अर्हिसिचिय सीयल—चन्दरणेण । पड वाइय वर कामिणिजणेण ।

आसासिय सुन्दरि पवण—पिय । णं थिय तुहिणाह्य कमल सिय ॥<sup>10</sup>

यह एक ऐसा चित्र है जिसमें कमल का पुष्प हिम से आहत है। उसका जलतत्त्व निकल चुका है, इसलिए उसका रंग भी विवर्ण हो गया है। उसकी ऊर्जा भी समाप्त हो गई है। वह बेबस हो कर शव की तरह लटक गया है और जिसके सहारे लटका है उसे भी अपने बोझ से झुका रहा है अर्थात् शव की तरह विवर्ण और बोझिल। इसी प्रकार अनेक रेखीय स्थिर और मूक चित्र 'पउमचरिउ' में मिल जाते हैं।

एक और उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

वेल्नधर-धरे—मुक्क—पयाणउ । थिउ वलु सरयःभ—उल समाणउ ॥<sup>11</sup>

रेखाओं से निर्मित इस चित्र में कवि ने शरद ऋतु के आकाश का दृश्य प्रस्तुत किया है। शरद ऋतु के मेघ पावस ऋतु की तरह घने और गतिशील नहीं होते अपितु वे दूर-दूर छितरे और ठहरे हुए होते हैं। निर्मल नीला खुला आकाश है और उसमें यहाँ-वहाँ कुछ-कुछ दूरी पर रुई जैसे सफेद बादल जमे हुए हैं। यह स्थिर चित्र उस समय उभरता है जब रावण की सेना की टुकड़ियाँ वेल्नधर पर्वत पर यहाँ-वहाँ जगह-जगह डेरा डालकर जम जाती हैं।

## 4. छाया चित्र

### छाया-प्रकाश गतिशील चित्र

विहि मि णिरन्तर-वावरणे सर-जालु पहावइ ।

विभहोँ सज्भहोँ मज्भोँ थिउ घण डम्बर णावइ ॥<sup>12</sup>

प्रस्तुत चित्र शत्रुघ्न और मधु राजा के बीच संग्राम-व्यापार में उभरा है। दोनों निरन्तर तीक्ष्ण तीव्र बाण छोड़ रहे हैं। बाण विविध-दूरी पर गिर रहे हैं और विविध गति से ऊँचाई को पार कर रहे हैं। वे ऐसे दीखते हैं मानो विन्ध्याचल और सह्य पर्वत के बीच आतिशबाजी छूट रही हो। इन में दोनों पर्वत हरे और काले हैं। आतिशबाजी रात्रि के काले अन्धेरे में ही निखरती है, दिन के प्रकाश में तो आहट ही आहट रह जाती है, रंग नहीं दिखाई पड़ते। मालूम ऐसा पड़ता है कि बाण एक-दूसरे से टकराकर चिंगारियाँ छोड़ रहे हैं।

कवि ने इस चित्र को उपयुक्त पृष्ठभूमि में मूर्त किया है जो यथा-तथ ही नहीं अपितु सुन्दर और चटकदार भी हो गया है।

प्रकाश और छाया से निर्मित एक गतिशील चित्र कवि श्रीमाला के स्वयंवर का वर्णन करते समय प्रस्तुत करता है—

**पुर उज्जोवन्तिय दीपि जेम । पच्छइ अन्धारु करन्ति तेम ॥13**

श्रीमाला गौर वर्ण की है और गौर-वर्ण भी सुनहली आभा से युक्त है। काले हाथी पर बैठी वह स्वयंवर में सभा-मंडप में जैसे-जैसे आगे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे आगे-आगे प्रकाश फैलता जाता है उसके पीछे-पीछे अन्धकार छा जाता है। उसके मुख की दीप्ति बिजली की कौंधवाली है, दीप-शिखा जैसी है और पीछे घनी काली केशराशि है। काले हाथी की पृष्ठभूमि में व्यतिरेक से मुख की दीप्ति और भी अधिक चटक हो गई है। अतः यह चित्र उभरता है कि एक दीपशिखा आगे-आगे प्रकाश करती हुई पीछे-पीछे अन्धकार छोड़ती जाती है। इन्दुमती के स्वयंवर में कालिदास ने भी एक ऐसा चित्र उकेरा है—

**सञ्चारिणीं दीपशिखेव रात्रौ य थं व्यतीयाय पतिवरां सा ।**

**नेन्द्रेभानाद् इव प्रपेदे विवर्णं भाव सस भूमि पालः । रघुवंश 6.67**

**छाया प्रकाश स्थिर चित्र**

**रावण घरेँ जय तूरइँ अण्फालियइँ ।**

**राहव-बलेँ मुहइँ राइँ मसि-महलियइँ ॥14**

रावण और राम के बीच चल रहे युद्ध में जब कभी रावण की जीत होती है तब रावण की सेना में हर्षोल्लास फूट पड़ता है और राम की सेना का मुंह स्याही से पुत जाता है। चित्र का एक हिस्सा काला है और दूसरा उज्ज्वल। छाया और प्रकाश आत्मग्लानि व दुःख तथा उल्लास को मूर्त करते हैं।

ऐसा ही एक और चित्र तब सामने आता है जब कवि रावण के उपवन में बैठी सीता का वर्णन करने में लीन है—

**तहोँ वणहोँ मञ्जोँ हणुवन्तेण सीय णिहालिय दुम्मणिय ।**

**रां गयण-मग्गेँ उम्मिलिय चन्दनेहवीयहेँ तणिय ॥15**

सीता रावण के उपवन में है, विमन बैठी है मुख की कान्ति धीरे-धीरे काली पड़ती जा रही है, कहीं-कहीं लालिमा बच गई है। सीता के मन में आशा-निराशा के भाव आ-जा रहे हैं। निराशा का विचार कालेपन की कूची से उसके चेहरे को पोत सा जाता है और आशा की किरण उसमें कभी-कभी भटकी दीप्ति जैसे दीख पड़ती है। कवि को वह चन्द्रमुखी अब केवल द्वितीया के चन्द्रमा जैसी दीख रही है। यहां सीता के मन का तूफान क्षीण और अस्थायी प्रकाश से प्रतीत हुआ है।

### प्रकाशीय चित्र

‘पउमचरिउ’ में कुछ ऐसे भी चित्र हैं जिनमें केवल प्रकाश ही प्रकाश है यथा—

अण्णोक्के वारोँ छिण्णु छत्तु, णं खुडिउ मरालेँ सहसवत्तु ।  
णं सूरहोँ जेमन्तेहोँ विसालु, वियलिउ कराउ कलहोय थालु ॥<sup>16</sup>

युद्ध क्षेत्र में छत्र कट-कट कर गिर रहे हैं। बाण उनमें उलभे हुए हैं। कवि को वे हंसों द्वारा क्षुण्डित लालकमल पुष्प प्रतीत होते हैं या विशाल सूर्य जैसे दीखते हैं। लेकिन कवि को इसमें संतोष नहीं होता है। वह उस चित्र को पूरा-पूरा उतार नहीं पाया है। लाल-कमलों के टूटे पड़े होने पर भी उनमें संश्लेष नहीं है और सूर्य की विशालता में बाण नहीं है। दोनों कल्पनाओं में चित्र में कुछ छूटा रह गया। आकांक्षा रह गई है। काले बाण भी सुनहरे छत्र के प्रकाश के परावर्तन से स्वर्णमय हो गए हैं। इसलिए यहां कवि एक नया चित्र प्रस्तुत करता है कि सोने के थाल से किरणों निकल रही हैं, यहां कवि ने उन दोनों बिन्दुओं को मिला दिया है जहां स्वर्ण आभा जन्मती है और जहां से फूट-फूट कर बिखरती है। सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश है, इकठ्ठा भी और छिटका भी।

### 5. नाद चित्र

कवि ने एक विराट् शब्द-चित्र उस समय निर्मित किया है जब उसका एक पात्र रावण के वन को भंग करने में व्यस्त है—

वणु भंजमि रसमसकसमसन्तु । महिबीड-गाड विरसोरसन्तु ॥  
णायउल-विउल-चुम्भल-वलन्तु । रुक्खुक्खय-खर-खोणियं खलन्तु ॥  
णीसेस-दियन्तर-परिमलन्तु । कड्केल्लि-वेल्लि-लवली-ललन्तु ॥  
तुङ्गङ्ग-भिड्गे-गुमुगुमुगुमन्तु । तरु-लग्ग-भग्ग-डुमुडुमुडुमन्तु ॥  
एला कक्कोलय कडयडन्तु । वड-विडव-ताड-तडतडतडन्तु ॥  
करमर-करीर करकरयरन्तु । आसत्थागत्थिय-थरहरन्तु ॥  
मड्डड्ड मड्डु सय-खण्ड जन्तु । सत्तच्छय-कुसुमामोय दिन्तु ॥<sup>17</sup>

ध्वनियाँ अनेक हैं, नाद एक है और ये ध्वनियाँ रसमस, कसमस, पेड़ों के खींचने की, नागों के भागने की चुम्भलता, पेड़ों के उखड़ने और भूमि में गड्ढा होने की खलखलाहट, लवली (लौंग) आदि का ललकना, भौरों का गुमगुमाना, पेड़ों के आपस में टकराकर टूटने की डुम-डुमाहट, ऐला [इलायची] की कड़कड़ाहट, और वह ताड़ों की तडतड़ाहट, करमर [करील] की करकराहट, अश्वत्थ [पीपल] की थरथराहट सर्वत्र सुनाई पड़ रही है और सब ध्वनियाँ मिलाकर विराट् नाद का निर्माण कर रही हैं जो विध्वंस के क्रिया-व्यापार को मूर्त करता है।

### मिश्रित चित्र

वणमाल गियत्ते वि भग्गमाण । गय लक्खण-राम सुपुज्जमाण ॥  
थोवेन्तरे मच्छुत्थल्ल देन्ति । गोला-णइ बिट्ठ समुव्वहन्ति ॥

संसुअर - धोर - घुरुघुरुहरन्ति । करि - मयरड्डोहिय - डुहुडुहन्ति ॥  
 डिणडीर - सण्ड - मण्डलिउ देन्ति । ददुदुरय - रडिय - दुरुदुरुदुरन्ति ॥  
 कल्लोलुल्लोलहिँ उव्वहन्ति । उगघोस - घोस घवघवघवन्ति ॥  
 पडिल्लण-वलण-खलखलखलन्ति । खलखलिय-खडकक-खडकक देन्ति ॥  
 ससि-सड्ख-कुन्द-धवलोज्झरेण । कारणडुड्डाविय - डम्बेरण ॥<sup>18</sup>

गोदावरी नदी का एक अद्भुत गतिशील बोलता चित्र स्वयंभू के काव्य में ही हो सकता था। इसमें गति कहीं ध्वनि से मूर्त हुई है तो कहीं रंग से और कहीं ज्यामितीय कोणों और स्थितियों में वह रुक सी गई है। वेग से बहते जल का नाद जब घड़ियाल के मुंह से निकलता है तो नदी घुरघुराने लगती है, जब मेंढकों के गले में भर कर बाहर आता है तब वह दुरदुराने लगती है। तरंगों में गति के फूटने से वह छपछपाती है, मोड़ों पर मुड़ते हुए और भरनों के गिरने पर खलखलाती है और चट्टानों पर बहते हुए सरसराती है। इस संगीत के बीच नदी की गति भी समतल नहीं रहती, वह चढ़ती-उतरती है। हाथियों और मगरों के क्रीड़ा-आलोड़न से उठते-गिरते वेग के रूप में नदी डुहडुहाने का शब्द करती है और वह भंवर की भांति फँलते-मुड़ते फेन उगलती जाती है। इस आवाज और चाल के साथ-साथ नदी का एक रंग भी है जो शंखों, चन्द्रमा और कुन्द के श्वेत पुष्पों से मिलकर उजलाता है और मछलियों के शल्कों की चमक व उनकी उछल-कूद से कौंधता जाता है—श्वेत पर धवलिमा की कौंध, कुछ पीताभ श्वेत और दुग्ध धवल, सबसे मिलकर एक उठता हुआ प्रकाश का भभूरा जिसने गति का पकड़ना भी असंभव बना दिया है। नदी वेग में बदल गई है। रूप में यह चित्र मिश्रित है, इसमें रेखाएं हैं, रंग हैं, ध्वनि है, गति है और प्रकाश है, अर्थ में यह संश्लिष्ट है। ऐसा चित्र कवि तभी दे सकता है जब उसकी चेतना अनेक प्रकार के इन्द्रियबोध के स्तर पर एक साथ सक्रिय हो सके, संश्लिष्ट रूप से कार्य कर सके ऐसे चित्र स्वयंभू के व्यक्तित्व और उसकी दृष्टि की समग्रता के परिचायक हैं।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि कवि स्वयंभू ने सभी प्रकार के काव्य चित्र खड़े किए हैं वे रूप, रंग, रेखा सभी दृष्टियों से अनुपम हैं। इनके विषय विविध हैं, कुछ में प्रकाश की झलक है कुछ में छाया का बिखराव, कहीं रंगों की भास्वरता है तो कहीं नाद की लय। कुछ चित्र एकायामी हैं और कुछ अनेकायामी। इन चित्रों द्वारा प्रत्यक्ष प्रभाव, मूर्ति-मत्ता की सृष्टि हुई है। ये आकर्षक और मोहक चित्र चमत्कार के साधन नहीं हैं। इनसे अर्थ अधिक गहरा, संवेद्य और सृजनशील हुआ है। कवि ने जहां प्रकृति के विराट् चित्र दिए हैं और धरती तथा आकाश में धरती के जो चित्र प्रस्तुत किए हैं, उन्हें एक कर दिया है। वहां सहजता से ही यह अर्थ अनुभूत होता है कि सिद्धान्त और व्यवहार के एकरूप होने में ही पूर्णता है। उच्च ने निम्न को क्रोड में समेट लिया है और निम्न शिखरगामी हो गया है। इसी तरह प्राथमिक रंगों की संयोजना अनायास ही इस दार्शनिक विचार की अनुभूति करा देती है कि प्रपंच का मूल कारण प्रपंच में भी है और प्रपंच से परे भी। स्वयंभू ने अनेक दीखनेवाले विरोधी रंगों को एक आश्रय में सम्पूरक रूप में इस प्रकार नियोजित किया है कि उनका विरोध मिट गया है और सहयोग विस्तृत व गहरा हो गया है—एक संपूर्ण सृजन जो घटने-बढ़ने से घटता-बढ़ता नहीं है। स्वयंभू के काव्य-चित्रों में अनुभूति और विचार,

भाव और बुद्धि, राग और दर्शन की अलग प्रतीति नहीं होती। इनका अविभाज्य संश्लिष्ट रूप मिलता है। इन चित्रों में कवि की समग्र चेतना का शब्द, रेखाओं और रंगों से उन्मुक्त मिलन है। कला का अर्थ भी यही है। कला के विषय में केवल फोसीलन ही नहीं कहते, स्वयंभू के ये चित्र स्वयं ही बार-बार बोलते हैं -“कला संवेदना को रूप का परिधान मात्र नहीं पहनाती है वरन् कला संवेदना में रूप का उदय भी करती है।”

- 
- |                   |                   |
|-------------------|-------------------|
| 1. पउमचरिउ 11.6.9 | 10. वही 19.16 8-9 |
| 2. वही 14.6.1-9   | 11. वही 20.3.7    |
| 3. वही 49.11.10   | 12. वही 80.9.9    |
| 4. वही 63.11.2-9  | 13. वही 7.3.8     |
| 5. गीता 15.2      | 14. वही 6.3.11.10 |
| 6. पउमचरिउ 79.1.9 | 15. वही 49.7.10   |
| 7. वही 17.2.1-8   | 16. वही 48.10.6   |
| 8. वही 16.14.9    | 17. वही 51.1.2-8  |
| 9. वही 32.3.1-12  | 18. वही 31.3.1-7. |
-

# पउमचरिउ में बिब

—डॉ. जे. एस. कुसुमगीता



बिब काव्य का अनिवार्य उपादान है। वास्तव में बिब ही काव्य में भाव तथा विचार का साधक है। संसार की सभी भाषाओं के साहित्य में बिब की प्रधानता रही है। कवि के ऐंद्रिक संवेदनों की राग-संपृक्त अभिव्यक्ति ही बिब का रूप धारण करती है। अपने वर्ण्य विषय की सफल सार्थक अभिव्यंजना के लिए कवि किसी अन्य साधन का उपयोग करे या न करे, बिबों का उपयोग वह अवश्य करता है।

बिब अनिवार्य रूप में मूर्त ही होता है। चूंकि ऐंद्रिय अनुभवों में चाक्षुष अनुभव-रूप सर्वाधिक मूर्त होता है, बिब में रूप-तत्त्व की प्रधानता होती है। स्वयंभू के 'पउमचरिउ' में बिबों की भरमार है और अधिकांश बिब प्रकृति के क्षेत्र से गृहीत हैं। इन बिबों को सात वर्गों में बांटा जा सकता है—

1. जलीय बिब
2. आकाशीय बिब
3. पार्थिव बिब
4. वायव्य-बिब
5. तैजस बिब
6. ऋतु एवं काल संबंधी बिब
7. मानवेतर प्राणी-बिब।

संवेदनों के आधार पर बिब पांच प्रकार के हो सकते हैं—

1. चाक्षुष या दृश्य
2. श्रव्य
3. स्पर्श
4. आस्वाद्य
5. घ्राण।

'पउमचरिउ' में उपर्युक्त सभी बिब पाये जाते हैं।

## 1. दृश्य बिब

प्रत्येक कवि के काव्य में दृश्य-बिब ही अधिक होते हैं। स्वयंभू के काव्य में भी इसी की बहुलता है।

श्याम रंग की यमुना एवं उज्ज्वल गंगा का सुन्दर बिंब कवि यों प्रस्तुत करता है कि यमुना आर्द्र मेघों के समान श्यामरंग की थी जो नागिन की भांति काली थी और जल से भरी हुई थी।.....मानो धरती पर खींची गई काजल की लकीर हो। गंगा की तरंगें जल से एकदम स्वच्छ थीं, चंद्रमा और शंख के समान जो शुभ्र थीं।

.....जा अलय-जलय-गवलालि वण्ण ।  
जा कसिए भुअंगि व विसहो भरिय । कज्जल रेह व णं धरए धरिय ॥  
थोवंतरे जल - णिम्मल तरंग । ससि-संख-समप्पह दिट्ठ गंग ॥

69.7.6-8

प्रभात का वर्णन करते हुए कवि प्रकृति का एक सुंदर बिंब खड़ा कर देता है। सवेरे चंद्रमारूपी पक्षी उड़ गया और अंधकाररूपी मधुकर चला गया। रात्रिरूपी पेड़ के नष्ट होने पर तारारूपी फूल भी झड़ गए।

चंद-विहंगमे समुड्डावियए (गय) अन्धार महुयरे ॥  
तारा कुसुम-णियरे परिणलियँ मोडियए रयणि तरुवरे ॥

70.1-1

राम और रावण की सेनाओं में युद्ध हो रहा था। सूर्य डूब गया। लगता था आकाशरूपी वृक्ष में सूर्यरूपी सुंदर फल लग गया है। दिशाओं की शाखाओं से वह वृक्ष शोभित हो रहा था। संध्या के लाल-लाल पत्तों से वह युक्त था। बहुविध मेघ उसके पत्तों की छाया के समान लगते थे। ग्रह और नक्षत्र उसके फूलों के समूह थे। भ्रमर-कुल की भांति उस पर धीरे धीरे अंधकार फैलता जा रहा था। वह आकाशरूपी वृक्ष बहुत बड़ा था। परन्तु यश की लोभिन निशारूपी नारी ने उसके सूर्यरूपी फल को निगल लिया। घने अंधकार ने संसार को ढक लिया मानो उसने दोनों सेनाओं के युद्ध को रोक दिया।

.....सयल - वियंतर - दीहर-डालहो ॥  
उवदिस-रंखोलिर-उवसाहहो । संभा - पल्लव-णियर - सणाहहो ॥  
बहुवव अन्ध-पत्त-सच्छायहो । गह एक्खत्त - कुसुम - संघायहो ॥  
पसरिय अंधयार-भमर-उलहो । तहो आयास-दुमहो वर-विउलहो ॥  
णिसि णारिएँ खुड्डेँवि जस-लुद्धएँ । रवि फलु गिलिउ णाईँ णियसद्धएँ ।  
वहल तमालें जगु अंधारिउ । विहि मि वलहँ एं जुज्झु णिवारिउ ॥

63.11.3-8

शरद् के आगमन से वनवृक्षों की कांति और छाया सहसा सुन्दर हो उठी। नई नलिनियों के कमल ऐसी हंसी बिखेर रहे थे मानो कामिनीजनों के मुख ही हंस रहे हों। दृश्य ऐसा लग रहा था मानो अपने निरंतर निकलनेवाले धनरूपी धवल कलशों से आकाशरूपी महागज ने शरद्कालीन वसुधा की सौंदर्य-लक्ष्मी का अभिषेक कर उस अबोधिनी को कुंभगिरि पर अधिष्ठित कर दिया हो।



छडु जें छुडु जें सरयहोँ आगमरोँ, सच्छाय महाडुम जाय वरोँ ॥  
 णव णलिणहें कमलइँ विहसियइँ, णं कामिण-वयणइँ पहसियइँ ॥  
 धवलेण शिरंतर - शिगएँण, घण - कलसेहिँ गयण - महगएँण ॥  
 अहिँसिंचेवि त्तक्खणोँ वसुइ-सिरि, णं थविय अवाहिणि कुम्भइरि ॥

36.2.2-5

स्वयंभू नर्मदा को प्रिय से अनुरक्त बाला के रूप में कल्पित करके कैसा सुन्दर बिंब प्रस्तुत करते हैं, देखिए —

समुद्र के पास जाते हुए उसने शीघ्र अपना प्रसाधन कर लिया। जो उसमें जल के प्रवाह का धवधव शब्द हो रहा है, वही उसके नूपुरों की भंकार है, जितने भी कातियुक्त किनारे हैं वे ही उसके ऊपर ओढ़ने के वस्त्र हैं, जो जल खलबल करता हुआ उछलता है, वही रसनादाम है। उसमें उठनेवाले आवतं ही उसके शरीर की त्रिवलियों रूपी लहरें हैं। उसमें जलगजों के कुंभ ही उसके आधे निकले हुए स्तन हैं। फेन जो उठ रहे हैं, वे ही हार हैं, जलचरों के युद्ध से रक्तंजित जल ही उसके तांबूल के समान है, मतवाले गजों से जो उसका पानी मँला हुआ, वही मानो उसकी आँखों का काजल है, ऊपर नीचे होनेवाली तरंगें उसकी भौहों की भंगिमा है, जो उसमें भ्रमरमाला व्याप्त है वह उसकी केशावली है।

णम्मयाएँ मयरहरहोँ जन्तिएँ । एाईँ पसाहणु लइउ तुरंतिएँ ॥  
 धवधवंति जे जल-पवभारा । तो जि एाईँ एाउर-भंकारा ॥  
 पुलिणइँ जाईँ वे वि सच्छायइँ । ताईँ जे उड्डणाईँ णं जायइँ ॥  
 जं जलु खलइ बलइ उल्लोलइ । रसणा-वामु तं जि णं घोलइ ॥  
 जे आवत्त समुट्ठिय चंगा । ते जि णाईँ तणु-तिवलि तरंगा ॥  
 जे जल-हत्थि-कुम्भ सोहिल्ला । ते जि एाईँ थण अद्धुम्मिल्ला ॥  
 जो हिण्डीर-णियरु अंदोलइ । णावइ सो जें हार रखोलइ ॥  
 जं जलयर-रण-रंगिउ पाणिउ । तं जि एाईँ तंबोलु समाणिउ ॥  
 मत्त-हत्थि-मय-मइलिउ जं जलु । तं जि णाईँ किउ अक्खिहिँ कज्जलु ॥  
 जाउ तरंगिणिउ अवर-ओहउ । लाउ जि मंगुराउ णं भउहउ ॥  
 जाउ भमर-पंतिउ अल्लीणउ । केसावलिउ ताउ एां दिण्णउ ॥

14.3.1-11

## 2. श्रव्य बिंब

स्वयंभू के काव्य में श्रव्यबिंबों की बहुलता है जो कवि की श्रवणसंवेदना के बहुमुखी रूप का परिचायक है। भयंकर नाद, मेघ-गर्जन, सिंह-गर्जन, सागर-गर्जन, नदी का कल-कल नाद, पक्षियों का कलरव, वज्राघात की ध्वनि, आनंदभेरी, डमरुनाद, घंटों की ध्वनि आदि अनेक ध्वनियों को स्वयंभू ने प्रस्तुत किया है।

गोदावरी नदी का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि गोदावरी में मछलियाँ उछल-कूद मचा रही थीं। शिशुमारों में घोर घुरघुराती हुई, गज और मगरों के आलौडन से

डुहडुहाती हुई,.....मेंढकों की ध्वनि से टरती हुई, तरंगों के उद्वेल से बहती हुई, उद्घोष के शब्दों से छप-छप करती हुई, जल-प्रपातों के खलन और मोड़ से खलखल करती हुई और चट्टानों पर सरसराती हुई वह बह रही थी ।

.....गोला णइ विट्ठ समुव्वहंति ॥  
 सुमुअर - घोर - घुरुघुरुहुरंति । करि - मयरड्डोहिय - डुहडुहन्ति ॥  
 डिण्डीर-सण्ड - मण्डलिउ देन्ति । दब्बुरय - रडिय - बुरुबुरुवरन्ति ॥  
 कल्लोलुल्लोलहिं उव्वहन्ति । उग्घोस - घोस - घवघवघवन्ति ॥  
 पडिखलण-वलण-खलखलखलन्ति । खलखलिय - खलक्क-भडक्क देन्ति ॥

31.3.2-6

क्षेमंजलि-राज द्वारा फेंकी गयी शक्ति धकधकाती हुई समरांगण में इस तरह दौड़ी मानो नभ में तड़तड़ करती बिजली ही चमक उठी हो ।

धाडय धगधगन्ति समरंगणे । णं तडि तडयडन्ति णह - अंगणे ॥

31.11.7

हनुमान का विमान घंटों की टन-टन ध्वनि से भङ्कृत हो रहा था । रुनभुन करती हुई किकिणियों से मुखर था । घवघव और घर-घर शब्द से गुंजित था ।

.....टणटणंत - घंटा-वमालएँ ।  
 रणरणंत - किकिणि - सुघोसए । घवघवंत - घग्घर - रिणघोसए ॥

46.1.2-3

राम ने रावण के ऊपर अभियान किया । तरह-तरह के रण-वाद्य बज उठे । डउँ डउँ-डउँ डमरु शब्द, तरडक-तरडक नाद, धुम्मुक-धुम्मुक ताल, रँ-रँ-रँ कल-कल, तक्किस-तक्किस मनोहर स्वर, दुणिकांरि-दुणिकिरि वाद्य और गेगगदु-गेगगदु-घात इत्यादि अनेक भेद-संघातों से युक्त तूर्य बज उठे ।

डउँ-डउँ-डउँ-डउँ-डमरुघ-सद्वेँहिं । तरडक-तरडक - तरडक-णद्वेँहिं ॥  
 धुम्मुकु-धुम्मुकु - धुम्मुकु तालेँहिं । रँ-रँ-रँ रंजंत वमालेँहिं ॥  
 तक्किस-तक्किस-सरेँहिं मणोज्जेँहिं । दुणिकिटि-दुणिकिटि-थरिमदि वण्जेँहिं ॥  
 गेगगदु - गेगगदु - गेगगदु-घाएँहिं । एयाणेय - भेय संघाएँहिं ॥

56.1.8-11

ऐसे अनेक उदाहरण स्वयंभू के काव्य में पाये जाते हैं ।

### 3. स्पर्श बिंब

स्पर्श संवेदनाओं के अंतर्गत शीतलता, दाहकता, कठोरता, चिक्कणता तथा रक्षता प्रादि आती हैं ।

सीता राम से जल मांगती है जो हिम-शीतल और शशि की तरह निर्मल हो ।  
जलु कहि मि गवेसहो रिम्मलउ । जं तिस-हृह हिम-ससि सीयलउ ॥

27.12.3

सीता मालती-माला की तरह कोमल हाथों से राम का आलिंगन करती है ।  
जं आलिगइ वलय - सणाहहिं । मालइ - माला - कोमल बाहहिं ॥

38.4.5

दधिमुख नगर में एक भी सरोवर सूखा नहीं था मानो वे पर-दुःख-कातरता से शीतल थे ।

जहिं ण कयावि तलायइं सुवकइं । णं सीयलइं सुट्टु पर-दुवखइं ॥

47.1.4

इसी प्रकार दाहकता एवं कठोरता की संवेदनात्मक अनुभूतियों से संबंधित बिंब स्वयंभू के काव्य में पाये जाते हैं ।

#### 4. आस्वाद्य बिंब

स्वयंभू ने आस्वाद्य बिंब अधिक नहीं दिये हैं । ये प्रायः वचनों की तिक्तता, क्षाया मधुरता के व्यंजक बनकर आये हैं ।

कहीं पर स्वच्छ सफेद नमक रखा था जो खल और दुष्ट मनुष्यों के वचनों की तरह अत्यन्त खारा था ।

कत्थइ लवणइं रिम्मल तारइं । खल-दुज्जण-वयणइं व सु-खारइं ॥

45.12.11

लंकासुंदरी के मुखरूपी कुहर से कड़वी बातें निकलने लगीं ।

मुह-कुहर-विणिगगय-कडुअ वाय । 48.8.7

भोजन की मधुरता के बारे में कवि कहता है कि जो भी उसे खाता वह जिनवर के वचनों की भांति मधुरतम मालूम होता था ।

जहिं जे लइज्जइ तहिं जे ताहिं गुलियारउ जिणवर-वयणु जिह ।

50.11.14

वज्रकर्ण भोजन लेकर राम के पास पहुंचता है । वह ईख-वन की तरह मधुर रस से भरा था, उद्यान की तरह अत्यंत सुगंधित ।

बहुविह-खण्ड-पयारेहिं वडिठउ । उच्छु -वणं पिव मुह रसियडिठउ ॥  
उज्जाणं पिव सुट्टु सुअंधउ । .....

25.11.4-5

## 5. घ्राणबिंब

गंध से संबंधित इने-गिने बिंब ही स्वयंभू के काव्य में मिलते हैं। शरद् ऋतु में पारिजाता कुसुमों के पराग से मिश्रित सुगंधित पवन का भोंका आया। उस सुगंधित पवन से भ्रमर की तरह आकृष्ट होकर कुमार लक्ष्मण दौड़े।

वणें ताम सुअंधु वाउ अइउ । जो पारियाय-कुसुमम्भहिउ ॥  
कडिडए भमरु जिह तें वाएँ सुट्टु सुअन्धें ।  
धाइउ महमहणु..... 36.2.8-9

नलकूबर की वधू उपरंभा, रावण का परोक्ष में यश सुनकर उसी प्रकार आसक्त हो उठती है जिस प्रकार मधुकरी कुसुमगंध से वशीभूत होकर।

अणूरक्त-परोक्खए जे जसेण । जिह महअरि कुसुम-गंध-वसेण ॥ 15.11.6

स्वयंभू की दृश्य एवं श्रवण संवेदना अत्यंत तीव्र है। स्पर्श संवेदना में भी सूक्ष्मता है, किंतु रस एवं घ्राण संवेदना सामान्य है।

प्रकृतिपरक बिंबों को आठ वर्गों में बांटा जा सकता है।

### 1. जलीय बिंब

ये बिंब समुद्र, नदी, सरोवर, जलीय पुष्प कमल, जल-तरंग आदि से संबंधित हैं। जलीय बिंबों में स्वयंभू ने सागर संबंधी बिंबों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। संसाररूपी समुद्र की चर्चा स्वयंभू ने बार-बार की है। सेना का वर्णन करते समय कवि समुद्र-बिंब का उपयोग करता है।

राम और लक्ष्मण सेना के साथ ऐसे चल पड़े मानो जलचरों से भरा हुआ महासमुद्र ही उछल पड़ा हो। शत्रु को क्षुब्ध करनेवाली आनंद की भेरी बज उठी, मानो समुद्र ही अपनी तरंग-ध्वनि से गरज पड़ा हो।

णाई महा समुद्दु, जलयर-रउद्दु, उत्थल्लिउ ॥  
दिण्णाणंद - भेरि पडिवक्ख खेरि, खर-वज्जिय ॥  
णं मयरहर वेल, कल्लोलबोलं, गलगज्जिय ॥ 40.16.2-3

लक्ष्मण ने सामने शत्रु-सेनारूपी भयंकर समुद्र को उछलते हुए देखा। सेना का आवर्त ही उसका गरजना था, हथियाररूपी जल और तुषार-कण छोड़ता हुआ, ऊँचे ऊँचे अश्वों की लहरों से आकुल, मदमाते हाथियों के भुंडरूपी तटों से व्याप्त, ऊपर उठे हुए सफेद छत्रों के फेन से उज्ज्वल और ध्वजारूपी तरंगों से चंचल और जलचरों से सहित था।

.....पलय-समुद्दु णाई उत्थल्लिउ ॥  
सेणावत्त नितु गज्जंतउ । पहरण-तोय-तुसार-मुअंतउ ॥  
तंग-तुरंग-तरंग समाउलु । मत्त-महागय - घड वेलाउलु ॥

उबिभय-धवल-छत्त-फेणुज्जलु । घय कल्लोल-चलंत महाबलु ॥

रिउ-समुद्दु जं दिट्ठ भयंकरु ..... 25.16.2-5

चिंता, व्याकुलता तथा उत्साह की अभिव्यक्ति में कवि ने सागर का बिंब प्रस्तुत किया है। जैसे—

चिंता-सायरे पडियएँण जं मारुइ लद्धु तरणडउ ॥ 45.13.10

खोहिउ सायरो व्व लंका-णायरी जाया सभाउला । 51.12.1

जलहि व्व उत्थल्ल ॥ 51.11.9

वेल समुद्दहो जिह उत्थल्लिय ॥ 49.20.5

महि लंघेप्पिणु मयरहरु आयासहो णं उत्थल्लियउ ॥ 11.8.9

कैकेयी-स्वयंवर का वर्णन करते हुए कवि जलीय-बिंब का उपयोग करता है। जिस प्रकार समुद्र की महाश्री के सम्मुख नदियों के नाना प्रवाह आते हैं उसी प्रकार उसके स्वयंवर में अनेक राजा आए।

एाई समुद्द-महासिरिहें थिय जलवाहिरिण-पवाह समुह । 21.2.10

दशरथ के चार पुत्र भूमंडल के लिए चार महासमुद्र थे—

एाई महा-समुद्द महि - भायहो । 21.5.1

भरत को राम-वनगमन का समाचार मिलता है तो वे तुरंत मूर्छित हो जाते हैं। सब लोग ऐसे कातर हो उठते हैं मानो प्रलय की आग से संतप्त होकर समुद्र ही गरज उठा हो—

पलयाणल-संतुत्तु रसे वि लगु ण सायर । 24.6.9

समुद्र-संबंधी असंख्य बिंबों का स्वयंभू ने अपने काव्य में उपयोग किया है। समुद्र के साथ ही नदी-संबंधी बिंब भी हैं। नदियों का सागर की ओर उमड़कर आना भी बिंब-विधायक है।

बलय (आवर्त और चूड़ी) से अंकित, गोदावरी नदी मानो धरतीरूपी नव-वधु की कुलपुत्री हो जो अपने प्रिय समुद्र के आगे मुक्ताहार लिये अपना दायां हाथ पसार रही थी।

फेणावलि - वंक्रिय वलयालंक्रिय णं महि - कुलवहुणअहे तणिय ।

जलणिहि - भत्तारहो मोत्तिय-हारहो वाह पसारिय दाहिरिय ॥

31.3.8

स्वयंभू ने गंगा, गोदावरी और नर्मदा नदी के बिंब प्रस्तुत किये हैं।

जीवन की नश्वरता, लक्ष्मी (संपत्ति) की चंचलता, यौवन की अस्थिरता को व्यंजित करने के लिए भी जलीय बिंब प्रयुक्त हुए हैं।

जल-बिन्दु जेम जीविउ अ-थिर ॥

संपत्ति समुद्द-तरंग णिह । सिय चंचल विज्जुल-लेह जिह ॥

जोव्वणु गिरि-णइ-पवाद-सरिसु ।..... 54.5.5-7

जलीय पुष्प कमल का अधिकांश प्रयोग उपमान और रूपक के रूप में ही हुआ है ।

लक्ष्मण ने खर का सिर-कमल तोड़कर फेंक दिया । कोपाग्नि उसकी मृणाल थी । युद्ध से कटकटाते उसके दांत पराग थे और अधर पत्ते ।

कोवाणल-णालउ कटि-कण्टालउ दसण-सकेसर अहर-दलु ।

महुमहण-सरग्गे असि-णहरग्गे खुण्टे वि घत्तिउ सिर कमलु ॥ 40.9.11

रावण के अंतःपुर के वर्णन में भ्रमर-कमल के बिंब का प्रयोग हुआ है—

णं स-भमरु माणस-सरवरेँ कमलिणि-वणु पप्फुल्लियउ । 49.11.10

अठारह हजार युवतियाँ आकर सीतादेवी से इस तरह मिलीं मानो सौंदर्य के सरोवर में कमल ही खिल गये हों ।

णं सरवरेँ सियहेँ णिसण्णइँ सयवत्तइँ पप्फुल्लियइँ । 49.12.8

स्वयंभू के जलीय बिंब प्रभाव-साम्य तथा गुण-साम्य पर आधारित हैं । ये बिंब कवि की निरीक्षण-क्षमता एवं बिंब-निर्माण-सामर्थ्य के प्रमाण हैं ।

## 2. आकाशीय बिंब

स्वयंभू के काव्य में आकाशीय बिंबों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है । इसके अंतर्गत सूर्य और चंद्र संबंधी बिंब अधिक हैं । इनके अतिरिक्त राहु, मंगल और शनि के बिंब भी पाये जाते हैं । घन, बिजली और नक्षत्रों से भी कवि ने बिंब-निर्माण किया है ।

विमान में बैठा हुआ हनुमान ऐसा जान पड़ता था मानो आकाश में रथसहित सूर्य ही जा रहा हो, उसका विमान मणि-किरणों की कांति से चमक रहा था, वह निशा-चंद्र के समान चंद्रकांत मणियों से जड़ा हुआ था ।

मणि-मऊह-सच्छायएँ । णिच्चं देव-णिम्मिए ।

चंदकंति-खच्चिए । रयणी-चंदे व-णिम्मिए ॥ 46.1.1

राम और लक्ष्मण सीतादेवी के साथ वटवृक्ष के नीचे बैठे हैं । तब भी सुकवि के काव्य की तरह आकाश में मेघजाल फैलने लगा जैसे चंद्रमा की चांदनी फैलती है, जैसे सूर्य की किरणें फैलती हैं, वैसे ही आकाश में मेघजाल फैलने लगा । ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो पावस राजा यश की कामना से मेघ महागज पर बैठकर, इंद्रधनुष हाथ में लेकर ग्रीष्म नराधिप पर चढ़ाई करने के लिए सन्नद्ध हो रहा हो ।

पसरइ सुकइहेँ कव्वु जिह मेह-जालु गयणांगणे तावेँहिँ ।

पसरइ मेह-विदु गयणांगणे.....

पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहो । .....  
 .....पसरइ जेम रासि एहे सूरहो ।  
 अमर - महाधनु - गहिय - कश् मेह - गइदे चडे वि जस - लुद्धउ ॥  
 उप्परि - गिम्भ - एराहिवहो पाउस - राउ णाई सण्णद्धउ ॥ 28.1

बार-बार बढ़ती हुई भयंकर चंद्रनखा ऐसी लगती थी मानो बादलरूपी दही को मथ रही हो, या तारारूपी सैकड़ों बुद्बुद बिखर गये हों, या शशिरूपी नवनीत का पिंड लेकर ग्रहरूपी बच्चे का पीछा लगाने के लिए दौड़ पड़ी हो। मानो वह आकाशरूपी शिला को उठा रही थी या राम और लक्ष्मण रूपी मोतियों के लिए धरती और आसमानरूपी सीपी को एक क्षण में तोड़ना चाहती थी।

एणं घुसलइ अग्भ चिरिडिडहिल्लु । तारा-वुब्बुव-सय-विडिडरिल्लु ।  
 ससि-लोणिय-पिण्डउ लेवि धाइ । गह-डिम्भहो पीहउ देइ णाई ॥  
 .....णं एहयल-सिल गेण्हइ सिरेण ॥  
 णं हरिबल-मोत्तिय-कारणेण । महि-गयण-सिप्पि फोडइ खणेण ॥ 37.1.4-7

हुनुमान सीता से कहता है—“तुम्हारे वियोग में राम क्षयकाल के इंद्रु की तरह ह्यासोन्मुख हो रहे हैं। वे दसमी के इंद्रु की तरह अत्यंत दुर्बल और अशक्त शरीर हैं।”

इंद्रु व चवण-काले ल्हसिउ दसमिहे अगमणे जेम जलहि ।  
 खाम-खामु परिभीण-तणु तिह तुम्ह विओए दासरहि ॥ 50.1.10

स्वयंभू के आकाशीय बिंबों में उपादानों की विविधता ही नहीं, प्रयोग की बहुलता भी है।

### 3. पार्थिव बिंब

आकाशीय तथा जलीय बिंबों की भांति पार्थिव बिंब प्रस्तुत करने में भी स्वयंभू सफल हुए हैं। पार्थिव बिंबों के अंतर्गत उन्होंने विशेष रूप से पर्वतों, वनों, वृक्षों, पुष्पों और फलों के बिंब प्रस्तुत किये हैं।

त्रिकूट नामक पहाड़ ऐसा दीख पड़ता है मानो सूर्यरूपी बालक के लिए धरतीरूपी कुलवधू अपना स्तन दे रही हो।

गिरि विट्ठु तिकूडु जण - मण - णयण - सुहावणउ ।  
 रवि डिम्भहो दिण्णु एणं महि - कुलवहुअए थणउ ॥ 42.8.9

नाना प्रकार की वृक्षमालाएं कवि को ऐसी लगती हैं मानो धरारूपी वधू की रोम-राजी हो।

कथ वि णाणाविह-रुक्ख-राइ । णं महिकुलवहुअहे रोम-राइ ॥ 36.1.8

दरबाररूपी वन शत्रु रूपी वृक्षों से सघन, सिंहासनरूपी पहाड़ों से मण्डित और प्रौढ़ विलासिनीरूपी लताओं से प्रचुर, अनन्तवीर्यरूपी बेलफल से युक्त, और अतिवीररूपी सिंहों से युक्त था।

पढठ णरिदत्थाण-बणेँ रिउ-रुक्ख-घणेँ सिहासण-गिरिवर मण्डिँ ॥  
पोढ-विलासिणि-लय-वहलेँ वर-वेल्लहलेँ अइ-वीर-सीह-परिचडिँड् ॥ 30.5.8

इंद्रजीत अपनी पत्नी से कहता है कि वह राघव के सैनिक-वन में प्रलय की आग बनेगा। उस वन में मनुष्यों के पेड़ होंगे जो भुजदंडों की शाखाएँ धारण करते हैं, जो हथेलियों और उंगलियों के कुसुमों से पूरित हैं, सुंदर स्त्रियों की लताओं और बिल्वफलों से युक्त हैं। छत्र और ध्वजाएँ जिसमें रुखे पेड़ हैं, अश्व और गज तरह-तरह के वनचर हैं और जिसमें शत्रुओं के प्राणरूपी पंखी उड़ रहे हैं, त्रस्त अश्वरूपी हरिण जिसमें हैं और जो राम एवं लक्ष्मण रूपी शिखरों से युक्त हैं।

.....दुद्धर-णरवर-तरुवर-णियरेँ ॥  
भुवदंड-चंड-जालोलि-धरेँ । करयल पल्लव-णह - कुसुम भरेँ ॥  
मणहर-कामिणि - लय-वेल्लहलेँ । छत्त-द्वय-सुक्क-रुक्ख-वहलेँ ॥  
हय-गय-वणयर-णाणाविहएँ । रिउ-पाण-सुमुड्डाविय-विहएँ ॥  
उत्तट्ठ-तुरंगम - हरिण हरे । हरि - हलहर-वर-पव्वय सिहरेँ ॥

62.11.4-8

अधिकता, विशालता एवं दृढ़ता व्यजित करने के लिए कवि ने बार-बार पहाड़ का बिंब खड़ा किया है।

#### 4. वायव्य बिंब

वायु के बिंब भी स्वयंभू के काव्य में मिलते हैं। ग्रीष्म का अंत कवि को कैसा लगता है, देखिए—

हवा में हिलते-डुलते लाल कोंपलवाले वृक्ष मानो इस बात की घोषणा कर रहे थे कि ग्रीष्म राजा का वध किसने कर दिया।

रत्त पत्त तरु पवणाकंपिय । 'केण वि वहिउ गिम्भु' णं जंपिय । 28.3.8

राम के भीषण चाप-शब्द को सुनकर विद्या उसी तरह धर-धर कांप उठी जैसे हवा से केले का पत्ता।

तं भीसणु चावसदु-सुणेँवि केलि व वाएं थरहरिय । 43.17.9

राजा महेंद्र के लकुटिदंड के प्रहार से हनुमान उसी प्रकार गिर पड़ा जिस प्रकार दुर्वात से वृक्ष गिर पड़ता है।

तेण लउडि-दण्डाहिघाएँणं । तरुवरो व्व पाडिउ दुवाएँणं ॥ 46.8.2

विपरीत हवा में उड़ता हुआ ध्वज-समूह दूर से ऐसा शोभित हो रहा था मानो राम और लक्ष्मण के आने पर रावण का मन ही डगमगा रहा हो।

धय-णिवहु पवण-पडिकूलउ दूरत्थेहिँ विहावियउ ।

णं लक्खण-रामायणेँण रामण-मणु डोल्लावियउ ॥ 56.14.9

उपर्युक्त बिंबों द्वारा कवि ने सुंदर चित्र प्रस्तुत किये हैं।



## 5. तैजस बिंब

तैजस अथवा अग्निसंबंधी बिंबों का प्रयोग स्वयंभू ने अधिक नहीं किया है। क्रोध के भाव की अभिव्यक्ति में कवि ने अग्नि के बिंब का प्रयोग किया है।

शत्रु-सेना की बातें सुनकर लक्ष्मण प्रदीप्त हो उठता है, मानो घी पड़ने से आग भड़क उठी हो।

तं वयणु सुरोप्पिणु हरि पलित्तु । उद्धाइउ सिहि एं घिएँण सित्तु ॥

29.9.2

हनुमान द्वारा उद्यान के उजाड़ देने की बात सुनकर रावण क्रोधित होता है मानो किसी ने आग में घी डाल दिया हो।

तं गिसुणेप्पिणु दहवयणु कुविउ दवग्गि व सित्तु घिएँण । 51.9.10

वीरों के युद्धोत्साह की अभिव्यंजना में कवि स्वयंभू ने बार-बार प्रलयाग्नि का बिंब खड़ा किया है।

## 6. ऋतु एवं काल संबंधी बिंब

ऋतुओं में प्रायः सभी ऋतुओं के बिंब स्वयंभू ने प्रस्तुत किये हैं।

फाल्गुन का महीना बीत चुका था और वसंत राजा कोयल के कलकल मंगल के साथ आनंदपूर्वक प्रवेश कर रहे थे। भ्रमररूपी बंदीजन मंगलपाठ पढ़ रहे थे और मोररूपी कुब्ज वामन नाच रहे थे। इस तरह अनेक प्रकार के हिलते-डुलते तोरण-द्वारों के साथ वसंत राजा आ पहुँचा। कहीं आम के पेड़ों में नये किसलय फल-फूलों से लद रहे थे। कहीं कांतिरहित पहाड़ों के शिखर काले रंगवाले दुष्ट मुखों की तरह दिखाई दे रहे थे। कहीं वैशाख माह की गर्मी से सूखी हुई धरती ऐसी जान पड़ती थी मानो प्रिय-वियोग से पीड़ित कामिनी हो।

.....फग्गुण-मासु पवोलिउ तावेँहिँ ॥

पइठु वसंतु-राउ आणंदेँ । कोइलु - कलयल - मंगल-सवदेँ ॥

अलि-मिहुरणेँहिँ बंबिणेँहिँ पदंतेँहिँ । वरहिण-वावणेँहिँ एचचंतेँहिँ ॥

अंदोला - सय - तोरण - वारेँहिँ । दुक्कु वसंतु अणोय-पयारेँहिँ ॥

कत्थइ चूम - वणइँ पल्लवियइँ । एव-किसलय-फल-फुल्लभहियइँ ॥

कत्थइ गिरि सिरहइँ विच्छायइँ । खल मुहइँ व मसि-वणणइँ रायइँ ॥

कत्थइ माहव मासहोँ मेइणि । पिय-विरहेण व सुसइ कामिणि ॥

26.5.1-7

पावस और ग्रीष्म का यह बिंब देखिए—

जब पावस राजा ने गर्जना की तो ग्रीष्म राजा ने धूलि का वेग छोड़ा, वह जाकर मेघ-समूह से चिपट गया। परन्तु पावस राजा ने बिजली की तलवारों के प्रहार से उसे भगा दिया। जब वह धूलिवेग (बवंडर) उलटे मुँह लौट आया तो ग्रीष्म-वेग पुनः उठा। धगधगाता और हस-हस करता हुआ वह वहाँ पहुँचकर जल-जल कर प्रदीप्त हो उठा। उससे चिनगारियाँ

छूटने लगीं । उसने धूमावलि के ध्वजदंड उखाड़कर तूफान की तलवार से भड़भड़ कर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया । तरुवररूपी शत्रु-समूह भग्न होने लगे । मेषघटा विघटित हो उठी । इस प्रकार ग्रीष्म राजा पावस राजा से भिड़ गया । तब पावस ने विजली की टंकार करके इन्द्रधनुष पर डोरी चढ़ा ली । जलधर की गजघटा को प्रेरित किया और बूंदों के तीरों की बौछार शुरू कर दी ।

जं पाउस णरिंदु गलगज्जिउ । धूली-रउ गिम्भेण विसज्जिउ ॥  
 गम्पिणु मेह-बिदेँ आलगउ । तडि-करवाल-पहारेँहि भगउ ॥  
 जं विवरम्मुहु-चलिउ विसालउ । उट्ठिउ 'हणु' भगंतु उण्हालउ ॥  
 धग-धग-धग-धगंतु उद्धाइउ । हस हस हस हसंतु संपाइउ ॥  
 जलजलजलजलजल पचलंतउ । जावावलि फुलिग मेल्लंतउ ॥  
 धूमावलि-धयदंडुभेपिणु । वर-वाउल्लि-खगु कड्ढेपिणु ॥  
 भडभड-भडभडंतु पहरंतउ । तरुवर-रिउ भड थड भज्जंतउ ॥  
 मेह-महागय घड विहडंतउ । जं उण्हालउ विट्ठु भिडंतउ ॥  
 धणु अण्फालिउ पाउसेण तडि-टंकार-फार दरिसंतें ।  
 चोएँवि जलहर-हत्थि हड गोर-सरासणि मुक्क तुरंतें ॥ 28.2

ऋतुसंबंधी ऐसे अनेक सुंदर बिंब स्वयंभू ने अपने काव्य में दिये हैं ।

प्रातःकाल, संध्या तथा रात्रि के मनोहर बिंब भी स्वयंभू के काव्य में पाये जाते हैं ।

सूर्यास्त होने पर आरक्त संध्या कवि को ऐसी दिखाई पड़ती है मानो सिद्धर से अलंकृत गजघटा हो या वीर के रक्त-मांस से लिपटी हुई निशाचरी आनंद से नाच रही हो । संध्या बीत गई और रात आयी मानो उसने सोते हुए महान् विश्व को लील लिया हो । कहीं पर सैकड़ों जलते हुए दीपक शेषनाग के फणमणियों की तरह चमक रहे थे ।

जाइ संभ्र आरक्त पदीसिय । रां गय-घड सिद्धर-विहसिय ॥  
 सूर-मंस रहिरालि-चच्चिय । शिसियरि व्व आणंदु पणच्चिय ॥  
 गतिय संभ्र पुणु रयणि पराइय । जगु गिलेइ णं सुत्त महाइय ॥  
 कहि मि दिव्व दीवय-सय बोहिय । फणि-मणिव्व पजलंत सु-सोहिय ॥

23.9 2-5

प्रातःकाल का यह बिंब देखिए—

चारों ओर सुंदर सवेरा फैल गया । रातरूपी निशाचरी ने जिस सूरज को पहले निगल लिया था उसने अब उसे उगल दिया ।

शिसि-णिसियरि ए आसि जं गिलियउ । णाईं पडीवउ जउ उगिलियउ ॥

23.12.6

रात को कवि ने निशाचरी के रूप में चित्रित किया है । निशाचरी निशाचरी चारों ओर दौड़ पड़ी । धरती-आकाश सब कुछ उसने लील लिया । ग्रह, नक्षत्र उसके लंबे

नुकीले दाँत थे, समुद्र जीभ, पर्वत भयंकर दाढ़, मेघ नेत्र और चंद्रमा उस निशा-निशाचरी का तिलक था ।

गिसि-णिसियरि बस-दिसिह पधाइय । महि गयणोट्ठ डसेवि संपाइय ॥  
गह-णक्खत्त-दंत उद्वंतुर । उबहि-जीह-गिरि-दाढ़ा भासुर ॥  
घण-लोयण ससि तिलय-बिहूसिय । .....

26.19.3-5

## 7. मानवेतर-प्राणी-बिंब

प्राकृतिक बिंबों के अतिरिक्त स्वयंभू ने अनेक मानवेतर प्राणियों के आधार पर भी बिंब-योजना की है । उन्होंने पशु-पक्षियों के सुंदर चित्र प्रस्तुत किये हैं । पशुओं में सर्वाधिक बिंब हाथी और सिंह के हैं । कहीं हाथी और सिंह के युग्मरूप हैं तो कहीं स्वतंत्र रूप । दो वीरों के संघर्ष में प्रायः हाथी और सिंह का युग्मबिंब प्रस्तुत किया गया है ।

गरजता हुआ रामरूपी महागज, उस विशाल वृक्ष की गिरि-कंदरा से निकल आया । दो तूणीर ही उसका विपुल कुंभस्थल था । पुंखावलीरूपी भ्रमरमाला से वह व्याप्त हो रहा था । करधनी की घंटियों से भङ्कृत हो रहा था । विशाल वाणों रूपी दाँतों से वह भयंकर था । स्थूल और लंबे बाहु ही उसकी विशाल सूंड थी ।

गुलुगुलंतु हलहेइ महगउ । तरुवर-गिरि-कंदरहो विण्णगउ ॥  
सेय-पवाह-गलिय-गण्डत्थलु । तोणा-जुयल-विउल कुंभत्थलु ॥  
पिच्छावलि-अलिउल-परिमालिउ । किकिणि-गेज्जा-मालोमालिउ ॥  
वित्थिय-वाण-विसाण भयंकर । थोर-पलम्ब वाहु-लम्बिय-कर ॥

26.13.1-4

चंद्रनखा की दशा देखकर खर उसी तरह भड़क उठता है जिस तरह गज की गंध पाकर सिंह भड़क उठता है ।

गं केसरि मयगल-गंध-लुद्धु ॥ 37.7.7

हनुमान रावण से कहता है—“अरे, ऐरावत की सूंड की तरह प्रचंड बाहु..... यह जीव, मोह-मद से वैसे ही घेर लिया जाता है जैसे मत्त गज सिंह को घेर लेता है ।

भो सुरकरि-कर-संकास भुअ । .....  
वेडिज्जइ जीउ मोह मएँहि । पंचाणणु जेम मत्त गएँहि ॥

54.12.2-3

सिंह और मृग का बिंब भी स्वयंभू के लिए प्रिय है जिसका प्रयोग वे बार-बार करते हैं । खर-दूषण राम और लक्ष्मण से उसी प्रकार भिड़े जिस प्रकार हरिणों का भुंड सिंह से भिड़ता है ।

भिडिय राम-लक्खणाहं । जिह कुरंग वारणाहं ॥ 45.9.10

हनुमान विनयपूर्वक श्रीराम से कहता है कि उसकी गिनती सुग्रीव जैसे सुभटों में वंसी ही है जैसी सिंहों के बीच में कुरंग की ।

तर्हि हउं कवणु गहणु किर केहउ । सीहहं मज्जे कुरंगमु जेहउ ॥ 45.14.7

चंद्रनखा लक्ष्मण की तलवार सूर्यहास को देखकर वंसे ही एकदम त्रस्त हो उठी मानो व्याध के तीरों से आहत कुरंगी हो ।

लखण-खगु णिएवि पणट्ठी । हरिणि व बाह-सिलीमुह-तट्ठी ॥ 50.3.8

कहीं-कहीं वंदर, बेल, सूअर, कुत्ता आदि प्राणि-बिब भी स्वयंभू के काव्य में मिलते हैं ।

पक्षियों में विशेष रूप से मयूर का बिब स्वयंभू द्वारा प्रयुक्त हुआ है ।

हनुमान के आनंदघोष को सुनकर सेना में आनंद छा गया, मानो मेघ के गरजने पर मयूर संतुष्ट हो उठा हो ।

घणें गज्जिएं णं परितुट्ठ सिहि । 45.11.7

पशु-पक्षियों के अतिरिक्त जंतुओं के बिब भी स्वयंभू ने व्यवहृत किये हैं जिनमें सर्वाधिक प्रयोग सर्प का हुआ है ।

रात में जलते हुए दीपक शेषनाग के फण-मणियों की तरह चमक रहे थे ।

कहि मि दिव्व दीवय-सय बोहिय । फणि मणिव्व पजलंत-सु-सोहिय ।

23.9.5

नलकूबर का कुमार अपना कवच उसी प्रकार उतार देता है जिस प्रकार सांप अपनी केंचुली को ।

णावइ कंचुउ मुक्कु भुअंगे । 26.17.8

चंद्रनखा की लंबी केशराशि कटिभाग तक ऐसी फैली थी मानो सर्पसमूह चंदनलता से लिपट गये हों ।

णं चंदण-लयहेँ भुअंग लग्ग । 37.3.2

सर्प-बिब का प्रयोग कवि ने बार-बार किया है ।

उपर्युक्त बिबों के अतिरिक्त स्वयंभू ने कुछ ऐसे बिबों का उपयोग किया है जो उनके अनुभवों की व्यापकता एवं प्रतिभा की बहुमुखी ग्रहणशीलता का परिचय देते हैं ।

विस्तार से बोध के लिए स्वयंभू बार-बार सुकवि के काव्य का बिब प्रस्तुत करते हैं ।

तर्हि पट्टणे बहु-उवमहें भरियएँ णं जणे सुकइ-कव्वे वित्थरियए ॥

47.1.12

सुकवि की रसवर्धित कथा की भांति वे तीनों कन्याएं दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगीं ।

तिष्णिग वि कर्णणउ परिवद्धिद्वयउ । णं सुक्कइ-कहउ रस-वद्धिद्वयउ ।

47.2.4

सीता के लिए संदेश भेजते हुए राम कहते हैं—

तुम्हारे वियोग में उसी तरह क्षीण हो गया हूं जिस तरह चुगलखोरों की बातों से सज्जन पुरुष, .....मनुष्यों से वजित सुपंथ क्षीण हो जाता है ।

.....भीरण सु-पुरिसु व पिसुणालावेँ ॥

भीणु सुपंथु व जरण-परिचत्तउ । ..... 45.15

आग उसी प्रकार भड़क उठी जिस प्रकार दुष्टजनों के वचन । निर्धन के शरीर में जैसे क्लेश फैलने लगता है, वैसे ही आग फैलने लगी ।

धगधगमाणु.....गाइँ खल-जरण-वउ ॥

.....गाइँ किलेसु रिणहीण-सरीरहोँ ॥ 47.5,6

निशाचरी के तीर, गदा,अशनि, शिला सभी उसी प्रकार असफल हुए जिस प्रकार कृषक के घर से याचक असफल लौट जाते हैं ।

तं सयलु वि जाइ रिणस्थु किह घरेँ किविणहोँ तक्कुव-विन्दु जिह । 48.12.9

पारिवारिक क्षेत्र के भी कई बिंब स्वयंभू के काव्य में पाये जाते हैं । सीता राम से कहती है—“तुम शीघ्र नहीं लौटोगे, क्या पता कहीं तुम युद्धरूपी ससुराल में चमक-दमक-वाली कीर्ति-वधु से विवाह न कर लो ।”

मइँ मेल्लेँ वि भासुरएँ रण-सासुरएँ मा कित्ति-बहुअ परिणोसहि ॥ 30.3.9

आध्यात्मिक क्षेत्र के बिंब के भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं । कवि की कल्पना है कि यतियों को देखकर मानो वृक्ष श्रावकों की भांति नत हो गये ।

भयभीत—हरिन इस प्रकार खड़े थे मानो संसार से भीत संन्यासी ही हों ।

### नारी संबंधी बिंब के उदाहरण—

रचना और आकार-प्रकार में वह नगरी नारी की तरह प्रतीत होती थी । लंबे-लंबे पथ उसके पैर थे । फूलों के ही उसके वस्त्र और अलंकार थे । खाई की तरंगित त्रिवली से विभूषित थी । उसके गोपुर स्तनों के अग्रभाग की तरह जान पड़ते थे, विशाल उद्यानों के रोमों से पुलकित और सैंकड़ों वीरवधूटियों के केशर से अर्चित थीं । पहाड़ और सरिताएं मानो उस नगरी रूपी नारी की फैली हुई भुजाएं थीं । जल और फेनावलि उसकी चूड़ियाँ और नाभि थीं । सरोवर नेत्र थे, मेघ काजल थे और इंद्रधनुष भौहें । मानो वह नगरीरूपी नव-वधू चंद्रमा का तिलक लगा कर दिनकररूपी दर्पण में मुख देख रही थी ।

.....णं गारिहें अणुहरिय रिगभोएं ॥  
 दीहर-पंथ-पसारिय चलणी । कुमुम-गियत्थ-वत्थ साहरणी ॥  
 खाइय-तिबलि-तरंग-विहसिय । गोउर-थरणहर-सिहर-पदीसिय ॥  
 बिउलाराम-रोम-रोमाँचिय । इंवगोव-सय कुंकुम-अँचिय ॥  
 गिरिवर-सरिय-पसारिय-बाही । जल-फेणावलि-वलय-सणाही ॥  
 सरवर-णयण-घणजण-अँजिय । सुरधणु भउह पदीसिय पंजिय ॥  
 देउल-वयण-कमलु वरिसेप्पिणु । वर-मयलञ्छरण-तिलउ छुहेप्पिणु ॥  
 णाँइ णिहालइ दिरणयर-वप्पणु । एम विणिम्मउ सयलु वि पट्टणु ॥

28.5. 1-8

पौराणिक बिबों में समुद्र-मंथन का बिब स्वयंभू ने बार बार प्रस्तुत किया है ।

स्वयंभू के काव्य में प्रयुक्त बिबों का विवेचन करने पर स्पष्ट है कि स्वयंभू का बिब-वचन क्षेत्र अत्यंत व्यापक है । वे विशाल ब्रह्माण्ड के विविध क्षेत्रों से बिबों का चयन करते हैं । इनमें एक ओर परम्परागत बिबों का ग्रहण है, दूसरी ओर स्वानुभूति की भांकी ।

पउमचरिउ, स्वयंभू, सं.-डॉ. एच. सी. भयाणी, प्र.-भारतीय ज्ञानपीठ,

भाग 1 (तृतीय संस्करण 1975)

भाग 2 (प्रथम संस्करण 1958)

भाग 3 (प्रथम संस्करण 1958)

भाग 4 (प्रथम संस्करण 1969)

भाग 5 (प्रथम संस्करण 1970)

## विश्वास करो

जो णरवइ अइ सम्माण करु, सो पत्तिय अत्थ-समत्थ हरु ।  
जो होइ उवायणो बच्छलउ, सो पत्तिय विसहरु केवलउ ।  
जो मित्तु अकारणो एइ घरु, सो पत्तिय दुट्ठु कलत्त-हरु ।  
जो पन्थिय अलिय-सणोहियउ, सो पत्तिय चोरु अणोहियउ ।  
जो णरु अत्थकएँ लल्लि-करु, सो सत्तु णिरुत्तउ जीव-हरु ।  
जा कुलवहु सवहेँ हि ववहरइ, सा पत्तिय विरुय-सयइँ करइ ।

**भावार्थ**—जो राजा अति सम्मान दिखाता है, विश्वास करो कि वह धन और शक्ति का हरण करनेवाला होता है। जो अधिक उपहार देने में रुचि दिखाता है, विश्वास करो कि वह विषधर है। जो मित्र अकारण ही घर आता है, विश्वास करो कि वह घर की शान्ति का हरण करनेवाला है। जो राहगीर अधिक प्रेम का दिखावा करता है, विश्वास करो कि वह स्नेहहीन, चोर है। जो हमेशा चापलूसी करता है, वह निश्चय ही प्राणों का हरण करनेवाला शत्रु है। जो कुलवधू शपथों (सौगन्धों) के माध्यम से व्यवहार करती है विश्वास करो वह अनेक विरूपताएं करनेवाली है।

# अपभ्रंश रचना सौरभ

—डॉ. कमलचन्द सोगानी



## उत्थानिका

अपभ्रंश एक अति प्राचीन लोक-भाषा है। इसका विपुल साहित्य आज भी वर्तमान है। प्रान्तीय भाषाएं और राष्ट्र-भाषा हिन्दी इसी के विकसित रूप हैं। अतः इस भाषा का सीखना-सिखाना कई दृष्टियों से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसी बात को ध्यान में रखकर 'अपभ्रंश रचना सौरभ' नामक पुस्तक की रचना की गई है। उसका कुछ अंश 'अपभ्रंश भारती' में दिया जा रहा है।

इस पुस्तक के पाठों को एक ऐसे क्रम में रखा गया है जिससे पाठक सहज-सुचारु रूप से अपभ्रंश भाषा के व्याकरण को सीख सकेंगे और अपभ्रंश में रचना करने का अभ्यास भी कर सकेंगे। अपभ्रंश में वाक्य-रचना करने से ही अपभ्रंश का व्याकरण सिखाने का प्रयास किया गया है। यहां ध्यान देने योग्य है कि हेमचन्द्राचार्य के अपभ्रंश व्याकरण के सूत्रों का आधार इस प्रस्तुत पुस्तक के पाठों में लिया गया है। अन्य रूप जो अपभ्रंश साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं उनको 'अपभ्रंश रचना सौरभ' के दूसरे खण्ड में दिया जायेगा। व्याकरण के जो पक्ष इसमें छूट गये हैं उनको भी दूसरे खण्ड में ही दिया जायेगा। पाठकों के सुभाव मेरे बहुत काम के होंगे।



## पाठ 1

हउं=मैं

क्रियाएँ

हस=हँसना,  
रूस=रूसना,  
जीव=जीना,

सय=सोना,  
लुक्क=छिपना,

णच्च=नाचना  
जग्ग=जागना

### वर्तमानकाल

हउं	हसउं/हसमि/हसामि/हसेमि	=मैं हंसता हूँ/हँसती हूँ ।
हउं	सयउं/सयमि/सयामि/सयेमि	=मैं सोता हूँ/सोती हूँ ।
हउं	णच्चउं/णच्चमि/णच्चामि/णच्चेमि	=मैं नाचता हूँ/नाचती हूँ ।
हउं	रूसउं/रूसमि/रूसामि/रूसेमि	=मैं रूसता हूँ/रूसती हूँ ।
हउं	लुक्कउं/लुक्कमि/लुक्कामि/लुक्केमि	=मैं छिपता हूँ/छिपती हूँ ।
हउं	जग्गउं/जग्गमि/जग्गामि/जग्गेमि	=मैं जागता हूँ/जागती हूँ ।
हउं	जीवउं/जीवमि/जीवामि/जीवेमि	=मैं जीता हूँ/जीती हूँ ।

1. हउं=मैं, उत्तम पुरुष एकवचन (पुरुषवाचक सर्वनाम) ।
2. वर्तमानकाल के उत्तम पुरुष एकवचन में उं और मि प्रत्यय क्रिया में लगते हैं । 'मि' प्रत्यय लगने पर क्रिया के अनन्त 'अ' का आ और ए भी हो जाता है ।
3. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं । अकर्मक क्रिया वह होती है जिसका कोई कर्म नहीं होता और जिसका प्रभाव कर्ता पर ही पड़ता है । 'मैं हँसता हूँ' इसमें हँसने का प्रभाव 'मैं' पर ही पड़ता है । इस वाक्य में हँसने की क्रिया का कोई कर्म नहीं है ।
4. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं । इनमें कर्ता हउं के अनुसार क्रियाओं के पुरुष और वचन हैं । यहां हउं उत्तम पुरुष एकवचन में है तो क्रियाएँ भी उत्तम पुरुष एकवचन में हैं ।

## पाठ 2

तुहं=तुम

क्रियाएँ

हस=हँसना,

सय=सोना,

णच्च=नाचना

रूस=रूसना,

लुक्क=छिपना,

जग्ग=जागना

जीव=जीना

### वर्तमानकाल

तुहं	हसहि/हससि/हससे/हसेसि	=तुम हँसते हो/हँसती हो ।
तुहं	सयहि/सयसि/सयसे/सयेसि	=तुम सोते हो/सोती हो ।
तुहं	णच्चहि/णच्चसि/णच्चसे/णच्चेसि	=तुम नाचते हो/नाचती हो ।
तुहं	रूसहि/रूससि/रूससे/रूसेसि	=तुम रूसते हो/रूसती हो ।
तुहं	लुक्कहि/लुक्कसि/लुक्कसे/लुक्केसि	=तुम छिपते हो/छिपती हो ।
तुहं	जग्गहि/जग्गसि/जग्गसे/जग्गेसि	=तुम जागते हो/जागती हो ।
तुहं	जीवहि/जीवसि/जीवसे/जीवेसि	=तुम जीते हो/जीती हो ।

1. तुहं=तुम, मध्यम पुरुष एकवचन (पुरुषवाचक सर्वनाम) ।
2. वर्तमानकाल के मध्यम पुरुष एकवचन में 'हि', सि और से प्रत्यय क्रिया में लगते हैं । 'सि' प्रत्यय लगने पर क्रिया के अन्त्य 'अ' का 'ए' भी हो जाता है । यदि क्रिया के अन्त में 'अ' न हो तो 'से' प्रत्यय नहीं लगता है । (देखें पाठ 4)
3. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं ।
4. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं । इनमें कर्ता 'तुहं' के अनुसार क्रियाओं के पुरुष और वचन हैं । यहां 'तुहं' मध्यम पुरुष एकवचन में है, तो क्रियाएँ भी मध्यम पुरुष एकवचन में हैं ।

## पाठ 3

सो=वह (पुरुष), सा=वह (स्त्री)

### क्रियाएँ

हस=हँसना, सय=सोना, राचच=नाचना, रूस=रूसना  
लुक्क=छिपना, जग्ग=जागना, जीव=जीना

### वर्तमानकाल

सो	हसइ/हसेइ/हसए	=वह हँसता है।
सा	हसइ/हसेइ/हसए	=वह हँसती है।
सो	सयइ/सयेइ/सयए	=वह सोता है।
सा	सयइ/सयेइ/सयए	=वह सोती है।
सो	राचचइ/राचचेइ/राचचए	=वह नाचता है।
सा	राचचइ/राचचेइ/राचचए	=वह नाचती है।
सो	रूसइ/रूसेइ/रूसए	=वह रूसता है।
सा	रूसइ/रूसेइ/रूसए	=वह रूसती है।
सो	लुक्कइ/लुक्केइ/लुक्कए	=वह छिपता है।
सा	लुक्कइ/लुक्केइ/लुक्कए	=वह छिपती है।
सो	जग्गइ/जग्गेइ/जग्गए	=वह जागता है।
सा	जग्गइ/जग्गेइ/जग्गए	=वह जागती है।
सो	जीवइ/जीवेइ/जीवए	=वह जीता है।
सा	जीवइ/जीवेइ/जीवए	=वह जीती है।

1. सो=वह (पुरुष), सा=वह (स्त्री) अन्य पुरुष एकवचन (पुरुषवाचक सर्वनाम)
2. (क) वर्तमानकाल के अन्य पुरुष एकवचन में 'इ' और 'ए' प्रत्यय क्रिया में लगते हैं।  
'इ' प्रत्यय लगने पर क्रिया के अन्त्य 'अ' का 'ए' भी हो जाता है।  
(ख) 'ए' प्रत्यय अकारान्त क्रियाओं में ही लगता है। अकारान्त, ओकारान्त, उकारान्त, आदि क्रियाओं में 'ए' प्रत्यय नहीं लगेगा। ठा=ठहरना, हो=होना, हु=होना, आदि क्रियाओं में 'ए' प्रत्यय वर्तमानकाल नहीं लगेगा। (देखें पाठ 4)
3. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं।
4. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं।

## पाठ 4

हउं=मैं, तुहं=तुम, सो=वह (पुरुष), सा=वह (स्त्री)

### क्रियाएँ

ठा=ठहरना, णहा=नहाना, हो=होना

### वर्तमानकाल

हउं	ठाउं/ठामि	=मैं ठहरता हूँ/ठहरती हूँ ।
हउं	णहाउं/णहामि	=मैं नहाता हूँ/नहाती हूँ ।
हउं	होउं/होमि	=मैं होता हूँ/होती हूँ ।
तुहं	ठाहि/ठासि	=तुम ठहरते हो/ठहरती हो ।
तुहं	णहाहि/णहासि	=तुम नहाते हो/नहाती हो ।
तुहं	होहि/होसि	=तुम होते हो/होती हो ।
सो	ठाइ	=वह ठहरता है ।
सा	ठाइ	=वह ठहरती है ।
सो	णहाइ	=वह नहाता है ।
सा	णहाइ	=वह नहाती है ।
सो	होइ	=वह होता है ।
सा	होइ	=वह होती है ।

1. हउं=मैं, उत्तम पुरुष एकवचन  
 तुहं=तुम, मध्यम पुरुष एकवचन  
 सो=वह (पुरुष)  
 सा=वह (स्त्री) } अन्य पुरुष एकवचन  
 } पुरुष वाचक सर्वनाम एकवचन

2. अकारान्त क्रियाओं को छोड़कर आकारान्त, ओकारान्त आदि क्रियाओं के मध्यम पुरुष एकवचन में 'से' प्रत्यय नहीं लगता है, तथा इसी प्रकार अन्य पुरुष एकवचन में 'ए' प्रत्यय नहीं लगता है। ये दोनों प्रत्यय (से और ए) केवल वर्तमानकाल की अकारान्त क्रियाओं में ही लगते हैं।
3. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं।
4. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं।

## पाठ 5

अम्हे }  
अम्हइं } = हम दोनों/हम सब  
क्रियाएँ

हस = हँसना,  
रूस = रूसना,  
जीव = जीना

सय = सोना,  
लुक्क = छिपना,

णच्च = नाचना  
जग्ग = जागना

### वर्तमानकाल

अम्हे } अम्हइं }	हसहुं/हसमो/हसमु/हसम	=	हम दोनों हँसते हैं/हँसती हैं । हम सब हँसते हैं/हँसती हैं ।
अम्हे } अम्हइं }	सयहुं/सयमो/सयमु/सयम	=	हम दोनों सोते हैं/सोती हैं । हम सब सोते हैं/सोती हैं ।
अम्हे } अम्हइं }	णच्चहुं/णच्चमो/णच्चमु/णच्चम	=	हम दोनों नाचते हैं/नाचती हैं । हम सब नाचते हैं/नाचती हैं ।
अम्हे } अम्हइं }	रूसहुं/रूसमो/रूसमु/रूसम	=	हम दोनों रूसते हैं/रूसती हैं । हम सब रूसते हैं/रूसती हैं ।
अम्हे } अम्हइं }	लुक्कहुं/लुक्कमो/लुक्कमु/लुक्कम	=	हम दोनों छिपते हैं/छिपती हैं । हम सब छिपते हैं/छिपती हैं ।
अम्हे } अम्हइं }	जग्गहुं/जग्गमो/जग्गमु/जग्गम	=	हम दोनों जागते हैं/जागती हैं । हम सब जागते हैं/जागती हैं ।
अम्हे } अम्हइं }	जीवहुं/जीवमो/जीवमु/जीवम	=	हम दोनों जीते हैं/जीती हैं । हम सब जीते हैं/जीती हैं ।

1. अम्हे }  
अम्हइं } = हम दोनों/हम सब, उत्तम पुरुष बहुवचन (पुरुषवाचक सर्वनाम) ।

2. वर्तमानकाल के उत्तम पुरुष बहुवचन में 'हुं', 'मो', 'मु' और 'म' प्रत्यय क्रिया में लगते हैं । 'मो' 'मु' और 'म' प्रत्यय लगने पर अकारान्त क्रिया के अन्त्य 'अ' का 'आ' 'इ' और 'ए' भी हो जाता है । अतः हसामो, हसामु, हसाम/हसिमो, हसिमु, हसिम/हसेमो, हसेमु, हसिम रूप और बनेंगे । इसी प्रकार अन्य अकारान्त क्रियाओं के साथ भी समझ लेना चाहिए ।

3. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं ।

4. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं । यहाँ कर्ता उत्तम पुरुष बहुवचन में है अतः क्रिया भी उत्तम पुरुष बहुवचन की ही लगी है ।

## पाठ 6

तुम्हे }  
तुम्हइं } = तुम दोनों/तुम सब

क्रियाएँ

हस=हँसना,  
रूस=रूसना,  
जीव=जीना

सय=सोना,  
लुषक=छिपना,

णच्च=नाचना,  
जग्ग=जागना

### वर्तमानकाल

तुम्हे } तुम्हइं }	हसहु/हसह/हसित्था	= तुम दोनों हँसते हो/हँसती हो । = तुम सब हँसते हो/हँसती हो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	सयहु/सयह/सयित्था	= तुम दोनों सोते हो/सोती हो । = तुम सब सोते हो/सोती हो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	णच्चहु/णच्चह/णच्चित्था	= तुम दोनों नाचते हो/नाचती हो । = तुम सब नाचते हो/नाचती हो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	रूसहु/रूसह/रूसित्था	= तुम दोनों रूसते हो/रूसती हो । = तुम सब रूसते हो/रूसती हो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	लुषकहु/लुषकह/लुषकित्था	= तुम दोनों छिपते हो/छिपती हो । = तुम सब छिपते हो/छिपती हो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	जग्गहु/जग्गह/जग्गित्था	= तुम दोनों जागते हो/जागती हो । = तुम सब जागते हो/जागती हो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	जीवहु/जीवह/जीवित्था	= तुम दोनों जीते हो/जीती हो । = तुम सब जीते हो/जीती हो ।

1. तुम्हे }  
तुम्हइं } = तुम दोनों/तुम सब, मध्यम पुरुष बहुवचन (पुरुषवाचक सर्वनाम) ।
2. वर्तमानकाल के मध्यम पुरुष बहुवचन में 'हु', 'ह' और 'इत्था' प्रत्यय क्रिया में लगते हैं ।
3. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं ।
4. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं । यहाँ कर्ता मध्यम पुरुष बहुवचन में है अतः क्रिया भी मध्यम पुरुष बहुवचन की लगी है ।

## पाठ 7

ते=वे दोनों (पुरुष)/वे सब (पुरुष)

ता=वे दोनों (स्त्रियाँ)/वे सब (स्त्रियाँ)

क्रियाएँ

हस=हँसना,

रूस=रूसना,

जीव=जीना

सय=सोना,

लुक्क=छिपना,

णच्च=नाचना

जग्ग=जागना

### वर्तमानकाल

ते	हसहि/हसन्ति/हसन्ते/हसिरे	=	वे दोनों हँसते हैं । वे सब हँसते हैं ।
ता	हसहि/हसन्ति/हसन्ते/हसिरे	=	वे दोनों हँसती हैं । वे सब हँसती हैं ।
ते	सयहि/सयन्ति/सयन्ते/सयिरे	=	वे दोनों सोते हैं । वे सब सोते हैं ।
ता	सयहि/सयन्ति/सयन्ते/सयिरे	=	वे दोनों सोती हैं । वे सब सोती हैं ।
ते	णच्चहि/णच्चन्ति/णच्चन्ते/णच्चिरे	=	वे दोनों नाचते हैं । वे सब नाचते हैं ।
ता	णच्चहि/णच्चन्ति/णच्चन्ते/णच्चिरे	=	वे दोनों नाचती हैं । वे सब नाचती हैं ।
ते	रूसहि/रूसन्ति/रूसन्ते/रूसिरे	=	वे दोनों रूसते हैं । वे सब रूसते हैं ।
ता	रूसहि/रूसन्ति/रूसन्ते/रूसिरे	=	वे दोनों रूसती हैं । वे सब रूसती हैं ।
ते	लुक्कहि/लुक्कन्ति/लुक्कन्ते/लुक्किरे	=	वे दोनों छिपते हैं । वे सब छिपते हैं ।
ता	लुक्कहि/लुक्कन्ति/लुक्कन्ते/लुक्किरे	=	वे दोनों छिपती हैं । वे सब छिपती हैं ।

ते	जग्गहि/जग्गन्ति/जग्गन्ते/जग्गिरे	= वे दोनों जागते हैं। = वे सब जागते हैं।
ता	जग्गहि/जग्गन्ति/जग्गन्ते/जग्गिरे	= वे दोनों जागती हैं। = वे सब जागती हैं।
ते	जीवहि/जीवन्ति/जीवन्ते/जीविरे	= वे दोनों जीते हैं। = वे सब जीते हैं।
ता	जीवहि/जीवन्ति/जीवन्ते/जीविरे	= वे दोनों जीती हैं। = वे सब जीती हैं।

- 
1. ते=वे दोनों (पुरुष)/वे सब (पुरुष)  
ता=वे दोनों (स्त्रियाँ)/वे सब (स्त्रियाँ) } अन्य पुरुष बहुवचन  
(पुरुषवाचक सर्वनाम)
  2. वर्तमानकाल के अन्य पुरुष बहुवचन में 'हि' 'न्ति' 'न्ते' 'इरे' प्रत्यय क्रिया में लगते हैं।
  3. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं।
  4. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं। यहां कर्ता अन्य पुरुष बहुवचन में हैं अतः क्रिया भी अन्य पुरुष बहुवचन की लगी है।



## पाठ 8

अम्हे } = हम दोनों/ तुम्हे } = तुम दोनों  
 अम्हइं } = हम सब तुम्हइं } = तुम सब

ते=वे दोनों (पुरुष)/वे सब (पुरुष)

ता=वे दोनों (स्त्रियाँ)/वे सब (स्त्रियाँ)

## क्रियाएं

ठा=ठहरना,

णहा=नहाना,

हो=होना

## वर्तमानकाल

अम्हे } ठाहुं/ठामो/ठामु/ठाम } = हम दोनों ठहरते हैं/ठहरती हैं ।  
 अम्हइं } = हम सब ठहरते हैं/ठहरती हैं ।

अम्हे } णहाहुं/णहामो/णहामु/णहाम } = हम दोनों नहाते हैं/नहाती हैं ।  
 अम्हइं } = हम सब नहाते हैं/नहाती हैं ।

अम्हे } होहुं/होमो/होमु/होम } = हम दोनों होते हैं/होती हैं ।  
 अम्हइं } = हम सब होते हैं/होती हैं ।

तुम्हे } ठाहु/ठाह/ठाइत्या } = तुम दोनों ठहरते हो/ठहरती हो ।  
 तुम्हइं } = तुम सब ठहरते हो/ठहरती हो ।

तुम्हे } णहाहु/णहाह/णहाइत्या } = तुम दोनों नहाते हो/नहाती हो ।  
 तुम्हइं } = तुम सब नहाते हो/नहाती हो ।

तुम्हे } होहु/होह/होइत्या } = तुम दोनों होते हो/होती हो ।  
 तुम्हइं } = तुम सब होते हो/होती हो ।

ते ठाहि/ठान्ति→ठन्ति/ठान्ते→ठन्ते/ठाइरे } = वे दोनों ठहरते हैं ।  
 = वे सब ठहरते हैं ।

ता ठाहि/ठान्ति→ठन्ति/ठान्ते→ठन्ते/ठाइरे } = वे दोनों ठहरती हैं ।  
 = वे सब ठहरती हैं ।

ते णहाहि/णहान्ति→णहन्ति/णहान्ते→णहन्ते/णहाइरे } = वे दोनों नहाते हैं ।  
 = वे सब नहाते हैं ।

ता णहाहि/णहान्ति→णहन्ति/णहान्ते→णहन्ते/णहाइरे } = वे दोनों नहाती हैं ।  
 = वे सब नहाती हैं ।

ते होहि/होन्ति/होन्ते/होइरे = वे दोनों होते हैं।  
= वे सब होते हैं।

ता होहि/होन्ति/होन्ते/होइरे = वे दोनों होती हैं।  
= वे सब होती हैं।

1. अम्हे } = हम दोनों/हम सब, उत्तम पुरुष बहुवचन  
अम्हई }  
तुम्हे } तुम दोनों/तुम सब, मध्यम पुरुष बहुवचन  
तुम्हई }  
ते=वे दोनों (पुरुष)/वे सब (पुरुष) } अन्य पुरुष  
ता=वे दोनों (स्त्रियाँ)/वे सब (स्त्रियाँ) } बहुवचन
- } पुरुषवाचक  
} सर्वनाम  
} बहुवचन

2. वर्तमानकाल के प्रत्यय (पाठ 1 से 8 तक)

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	उं, मि	हुं, मो, मु, म
मध्यम पुरुष	हि, सि, से	हु, ह, इत्था
अन्य पुरुष	इ, ए	हि, न्ति, न्ते, इरे

3. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं।
4. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं। इनमें कर्ता के अनुसार क्रियाओं के पुरुष और वचन है।
5. संयुक्ताक्षर के पहिले यदि दीर्घ स्वर हो तो वह ह्रस्व हो जाता है—  
ठान्ति→ठन्ति, णहान्ति→णहन्ति आदि। अपभ्रंश में 'आ' 'ई' 'ऊ' दीर्घ स्वर होते हैं तथा 'अ' 'इ' 'उ' 'ए' और 'ओ' ह्रस्व स्वर माने जाते हैं।

## पाठ 9

हउं=मैं

क्रियाएं

हस=हँसना,  
रुस=रुसना,  
जीव=जीना

सय=सोना,  
लुक्क=छिपना,

णच्च=नाचना  
जग्ग=जागना

### विधि एवं आज्ञा

हउं	हसमु/हसेमु	=मैं हँसूँ।
हउं	सयमु/सयेमु	=मैं सोवूँ।
हउं	णच्चमु/णच्चेमु	=मैं नाचूँ।
हउं	रुसमु/रुसेमु	=मैं रुसूँ।
हउं	लुक्कमु/लुक्केमु	=मैं छिपूँ।
हउं	जग्गमु/जग्गेमु	=मैं जागूँ।
हउं	जीवमु/जीवेमु	=मैं जीवूँ।

1. हउं=मैं उत्तम पुरुष एकवचन (पुरुषवाचक सर्वनाम)
2. विधि एवं आज्ञा के उत्तम पुरुष एकवचन में 'म्' प्रत्यय क्रिया में लगता है। 'म्' प्रत्यय लगने पर क्रिया के अन्त्य 'अ' का 'ए' भी हो जाता है।
3. जब किसी कार्य के लिए प्रार्थना की जाती है तथा आज्ञा एवं उपदेश दिया जाता है तो इन भावों को प्रकट करने के लिए विधि एवं आज्ञा के प्रत्यय क्रिया में लगा दिए जाते हैं।
4. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं। अकर्मक क्रिया वह होती है जिसका कोई कर्म नहीं होता है और जिसका प्रभाव कर्ता पर ही पड़ता है। 'मैं हँसूँ' में 'हँसूँ' का पूरा संबंध 'मैं' से ही है, इसमें 'हँसूँ' का कोई कर्म नहीं है।
5. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं। इनमें कर्ता 'हउं' के अनुसार क्रियाओं के पुरुष और वचन हैं। यहां 'हउं' उत्तम पुरुष एकवचन में हैं तो क्रियाएँ भी उत्तम पुरुष एकवचन में हैं।

## पाठ 10

तुहं=तुम

क्रियाएं

हस=हँसना,

रूस=रूसना,

जीव=जीना,

सय=सोना,

लुक्क=छिपना,

णच्च=नाचना,

जग्ग=जागना,

### विधि एवं आज्ञा

तुहं	हसि/हसे/हसु/हस हसहि/हसेहि/हससु/हसेसु	=तुम हँसो ।
तुहं	सयि/सये/सयु/सय सयहि/सयेहि/सयसु/सयेसु	=तुम सोवो ।
तुहं	णच्चि/णच्चे/णच्चु/णच्च णच्चहि/णच्चेहि/णच्चसु/णच्चेसु	=तुम नाचो ।
तुहं	रूसि/रूसे/रूसु/रूस रूसहि/रूसेहि/रूससु/रूसेसु	=तुम रूसो ।
तुहं	लुक्कि/लुक्के/लुक्कु/लुक्क लुक्कहि/लुक्केहि/लुक्कसु/लुक्केसु	=तुम छिपो ।
तुहं	जग्गि/जग्गे/जग्गु/जग्ग जग्गहि/जग्गेहि/जग्गसु/जग्गेसु	=तुम जागो ।
तुहं	जीवि/जीवे/जीवु/जीव जीवहि/जीवेहि/जीवसु/जीवेसु	=तुम जीवो ।

1. तुहं=तुम मध्यम पुरुष एकवचन (पुरुषवाचक सर्वनाम)
2. विधि एवं आज्ञा के मध्यम पुरुष एकवचन में 'इ', 'ए', उ, '०', 'हि' और 'सु' प्रत्यय क्रिया में लगते हैं। 'हि' और 'सु' प्रत्यय लगने पर क्रिया के अन्त्य 'अ' का 'ए' भी हो जाता है।
3. शून्य प्रत्यय अकारान्त क्रियाओं में ही लगता है। आकारान्त, ओकारान्त, उकारान्त आदि क्रियाओं में एवं आज्ञा में शून्य प्रत्यय नहीं लगेगा। ठा=ठहरना, हो=होना, हु=होना आदि क्रियाओं में शून्य प्रत्यय नहीं होता है।
4. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं।
5. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं। इनमें कर्ता 'तुहं' के अनुसार क्रियाओं के पुरुष और वचन हैं। यहाँ 'तुहं' मध्यम पुरुष एकवचन में है तो क्रियाएँ भी मध्यम पुरुष एकवचन में हैं।

## पाठ 11

सो=वह (पुरुष)

सा=वह (स्त्री)

क्रियाएं

हस=हँसना,

रुस=रूसना,

जीव=जीना

सय=सोना,

लुक्क=छिपना,

णच्च=नाचना,

जग्ग=जागना,

### विधि एवं आज्ञा

सो	हसउ/हसेउ	=वह हँसे ।
सा	हसउ/हसेउ	=वह हँसे ।
सो	सयउ/सयेउ	=वह सोए ।
सा	सयउ/सयेउ	=वह सोए ।
सो	णच्चउ/णच्चेउ	=वह नाचे ।
सा	णच्चउ/णच्चेउ	=वह नाचे ।
सो	रुसउ/रुसेउ	=वह रूसे ।
सा	रुसउ/रुसेउ	=वह रूसे ।
सो	लुक्कउ/लुक्केउ	=वह छिपे ।
सा	लुक्कउ/लुक्केउ	=वह छिपे ।
सो	जग्गउ/जग्गेउ	=वह जागे ।
सा	जग्गउ/जग्गेउ	=वह जागे ।
सो	जीवउ/जीवेउ	=वह जीवे ।
सा	जीवउ/जीवेउ	=वह जीवे ।

1. सो=वह (पुरुष), सा=वह (स्त्री) अन्य पुरुष एकवचन (पुरुषवाचक सर्वनाम)
2. विधि एवं आज्ञा के अन्य पुरुष एकवचन में 'उ' प्रत्यय क्रिया में लगता है। 'उ' प्रत्यय लगने पर क्रिया के अन्त्य 'अ' का 'ए' भी हो जाता है।
3. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं।
4. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं।

## पाठ 12

हउं=मैं तुहुं=तुम ः सो=वह (पुरुष) सा=वह (स्त्री)

### क्रियाएँ

ठा=ठहरना,

णहा=नहाना,

हो=होना

### बिधि एवं आज्ञा

हउं	ठामु	=मैं ठहूँ ।
हउं	णहामु	=मैं नहाऊँ ।
हउं	होमु	=मैं होऊँ ।
तुहुं	ठाइ/ठाए/ठाउ/ठाहि/ठासु	=तुम ठहरो ।
तुहुं	णहाइ/णहाए/णहाउ/णहाहि/णहासु	=तुम नहावो ।
तुहुं	होइ/होए/होउ/होहि/होसु	=तुम होवो ।
सो	ठाउ	=वह ठहरे ।
सा	ठाउ	=वह ठहरे ।
सो	णहाउ	=वह नहावे ।
सा	णहाउ	=वह नहावे ।
सो	होउ	=वह होवे ।
सा	होउ	=वह होवे ।

- |                |                   |                              |
|----------------|-------------------|------------------------------|
| हउं=मैं        | उत्तम पुरुष एकवचन | } पुरुषवाचक सर्वनाम<br>एकवचन |
| तुहुं=तुम      | मध्यम पुरुष एकवचन |                              |
| सो=वह (पुरुष)  | अन्य पुरुष एकवचन  |                              |
| सा=वह (स्त्री) | अन्य पुरुष एकवचन  |                              |
- अकारान्त क्रियाओं को छोड़कर आकारान्त, ओकारान्त आदि क्रियाओं के मध्यम पुरुष एकवचन में '०' प्रत्यय नहीं लगता है ।
- उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं ।
- उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं ।

## पाठ 13

अम्हे }  
अम्हइं } = हम दोनों/हम सब

क्रियाएँ

हस = हँसना,  
रूस = रूसना,  
जीव = जीना,

सय = सोना,  
लुकक = छिपना,

राच्च = नाचना,  
जग्ग = जागना,

## विधि एवं आज्ञा

अम्हे } अम्हइं }	हसमो/हसामो/हसेमो	= हम दोनों हँसें । = हम सब हँसें ।
अम्हे } अम्हइं }	सयमो/सयामो/सयेमो	= हम दोनों सोवें । = हम सब सोवें ।
अम्हे } अम्हइं }	राच्चमो/राच्चामो/राच्चेमो	= हम दोनों नाचें । = हम सब नाचें ।
अम्हे } अम्हइं }	रूसमो/रूसामो/रूसेमो	= हम दोनों रूसें । = हम सब रूसें ।
अम्हे } अम्हइं }	लुककमो/लुककामो/लुककेमो	= हम दोनों छिपें । = हम सब छिपें ।
अम्हे } अम्हइं }	जग्गमो/जग्गामो/जग्गेमो	= हम दोनों जागें । = हम सब जागें ।
अम्हे } अम्हइं }	जीवमो/जीवामो/जीवेमो	= हम दोनों जीवें । = हम सब जीवें ।

1. अम्हे }  
अम्हइं } = हम दोनों/हम सब उत्तम पुरुष बहुवचन (पुरुषवाचक सर्वनाम)
2. विधि एवं आज्ञा के उत्तम पुरुष बहुवचन में 'मो' प्रत्यय क्रिया में लगता है। 'मो' प्रत्यय लगने पर क्रिया के अन्त्य 'अ' का 'आ' और 'ए' भी हो जाता है।
3. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं।
4. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं। इनमें कर्ता अम्हे/अम्हइं के अनुसार क्रियाओं के पुरुष और वचन हैं। यहाँ अम्हे/अम्हइं उत्तम पुरुष बहुवचन में हैं तो क्रियाएँ भी उत्तम पुरुष बहुवचन में हैं।

## पाठ 14

तुम्हे }  
तुम्हइं } = तुम दोनों/तुम सब

क्रियाएँ

हस = हँसना,  
रूस = रूसना,  
जीव = जीना

सय = सोना,  
लुक्क = छिपना,

राच्च = नाचना  
जगग = जागना

### विधि एवं आज्ञा

तुम्हे } तुम्हइं }	हसह/हसेह	= तुम दोनों हँसो । = तुम सब हँसो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	सयह/सयेह	= तुम दोनों सोवो । = तुम सब सोवो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	राच्चह/राच्चेह	= तुम दोनों नाचो । = तुम सब नाचो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	रूसह/रूसेह	= तुम दोनों रूसो । = तुम सब रूसो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	लुक्कह/लुक्केह	= तुम दोनों छिपो । = तुम सब छिपो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	जगगह/जगगेह	= तुम दोनों जागो । = तुम सब जागो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	जीवह/जीवेह	= तुम दोनों जीवो । = तुम सब जीवो ।

1. तुम्हे }  
तुम्हइं } = तुम दोनों/तुम सब मध्यम पुरुष बहुवचन (पुरुषवाचक सर्वनाम)

- विधि एवं आज्ञा के मध्यम पुरुष बहुवचन में 'ह' प्रत्यय क्रिया में लगता है। 'ह' प्रत्यय लगने पर क्रिया के अन्त्य 'अ' का 'ए' भी हो जाता है।
- उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं।
- उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं। इनमें कर्ता तुम्हे/तुम्हइं के अनुसार क्रियाओं के पुरुष और वचन हैं। यहां कर्ता तुम्हे/तुम्हइं मध्यम पुरुष बहुवचन में हैं तो क्रियाएँ भी मध्यम पुरुष बहुवचन में लगी हैं।



## पाठ 15

ते=वे दोनों (पुरुष)/वे सब (पुरुष)

ता=वे दोनों (स्त्रियाँ)/वे सब (स्त्रियाँ)

### क्रियाएं

हस=हँसना,

रूस=रूसना,

जीव=जीना

सय=सोना,

लुक्क=छिपना,

राचच्च=नाचना

जगग=जागना

### विधि एवं आज्ञा

ते	हसन्तु/हसेन्तु	= वे दोनों हँसें । = वे सब हँसें ।
ता	हसन्तु/हसेन्तु	= वे दोनों हँसें । = वे सब हँसें ।
ते	सयन्तु/सयेन्तु	= वे दोनों सोवें । = वे सब सोवें ।
ता	सयन्तु/सयेन्तु	= वे दोनों सोवें । = वे सब सोवें ।
ते	णच्चन्तु/णच्चेन्तु	= वे दोनों नाचें । = वे सब नाचें ।
ता	णच्चन्तु/णच्चेन्तु	= वे दोनों नाचें । = वे सब नाचें ।
ते	रूसन्तु/रूसेन्तु	= वे दोनों रूसें । = वे सब रूसें ।
ता	रूसन्तु/रूसेन्तु	= वे दोनों रूसें । = वे सब रूसें ।
ते	लुक्कन्तु/लुक्केन्तु	= वे दोनों छिपें । = वे सब छिपें ।
ता	लुक्कन्तु/लुक्केन्तु	= वे दोनों छिपें । = वे सब छिपें ।

ते	जग्गन्तु/जग्गेन्तु	वे दोनों जागें । = वे सब जागें ।
ता	जग्गन्तु/जग्गेन्तु	वे दोनों जागें । = वे सब जागें ।
ते	जीवन्तु/जीवेन्तु	वे दोनों जीवें । = वे सब जीवें ।
ता	जीवन्तु/जीवेन्तु	वे दोनों जीवें । = वे सब जीवें ।

1. ते=वे दोनों (पुरुष)/वे सब (पुरुष) } अन्य पुरुष बहुवचन  
ता=वे दोनों (स्त्रियाँ)/वे सब (स्त्रियाँ) } (पुरुषवाचक सर्वनाम)

2. विधि एवं आज्ञा के अन्य पुरुष बहुवचन में 'न्तु' प्रत्यय क्रिया में लगता है। 'न्तु' प्रत्यय लगने पर क्रिया के अन्त्य 'अ' का 'ए' हो जाता है।
3. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं।
4. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं।

## पाठ 16

अम्हे } = हम दोनों/  
अम्हइं } = हम सब

तुम्हे } = तुम दोनों/  
तुम्हइं } = तुम सब

ते = वे दोनों (पुरुष)/  
वे सब (पुरुष)

ता = वे दोनों (स्त्रियाँ)  
वे सब (स्त्रियाँ)

क्रियाएं

ठा = ठहरना,

ण्हा = नहाना,

हो = होना

### विधि एवं आज्ञा

अम्हे } अम्हइं }	ठामो	= हम दोनों ठहरें । = हम सब ठहरें ।
अम्हे } अम्हइं }	ण्हामो	= हम दोनों नहावें । = हम सब नहावें ।
अम्हे } अम्हइं }	होमो	= हम दोनों होवें । = हम सब होवें ।
तुम्हे } तुम्हइं }	ठाह	= तुम दोनों ठहरो । = तुम सब ठहरो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	ण्हाह	= तुम दोनों नहावो । = तुम सब नहावो ।
तुम्हे } तुम्हइं }	होह	= तुम दोनों होवो । = तुम सब होवो ।
ते	ठान्तु → ठन्तु	= वे दोनों ठहरें । = वे सब ठहरें ।
ता	ठान्तु → ठन्तु	= वे दोनों ठहरें । = वे सब ठहरें ।
ते	ण्हान्तु → ण्हन्तु	= वे दोनों नहावें । = वे सब नहावें ।
ता	ण्हान्तु → ण्हन्तु	= वे दोनों नहावें । = वे सब नहावें ।

ते होन्तु = वे दोनों होवें ।  
= वे सब होवें ।

ता होन्तु = वे दोनों होवें ।  
= वे सब होवें ।

1.  $\left. \begin{array}{l} \text{अम्हे} \\ \text{अम्हइं} \end{array} \right\} = \text{हम दोनों/हम सब, उत्तम पुरुष बहुवचन}$
- $\left. \begin{array}{l} \text{तुम्हे} \\ \text{तुम्हइं} \end{array} \right\} = \text{तुम दोनों/तुम सब, मध्यम पुरुष बहुवचन}$
- $\left. \begin{array}{l} \text{ते} = \text{वे दोनों (पुरुष)/वे सब (पुरुष)} \\ \text{ता} = \text{वे दोनों (स्त्रियाँ)/वे सब (स्त्रियाँ)} \end{array} \right\} \begin{array}{l} \text{अन्य} \\ \text{पुरुष} \\ \text{बहुवचन} \end{array}$
- } पुरुषवाचक सर्वनाम  
बहुवचन

2. **बिधि एवं आज्ञा के प्रत्यय (पाठ 9 से 16 तक)**

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मु	मो
मध्यम पुरुष	इ, ए, उ, ०, हि, सु,	ह
अन्य पुरुष	उ	न्तु

3. उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अकर्मक हैं ।
4. उपर्युक्त सभी वाक्य कर्तृवाच्य में हैं । इनमें कर्ता के अनुसार क्रियाओं के पुरुष और वचन हैं ।
5. संयुक्ताक्षर के पहिले यदि दीर्घ स्वर हो तो वह ह्रस्व हो जाता है । यहां ठान्ति→ठन्ति, ण्हान्ति→ण्हन्ति आदि । अपभ्रंश में 'आ' 'ई' और 'ऊ' दीर्घ स्वर होते हैं तथा 'अ', 'इ', 'उ', 'ए' और 'ओ' ह्रस्व स्वर माने जाते हैं ।

## सहयोगी लेखक

1. **डॉ. कमलचन्द सोषाणी**—बी.एससी., एम.ए., पीएच.डी.। नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र के विशेषज्ञ। प्राच्य-भाषाविद्। सेवानिवृत्त प्रोफेसर, दर्शन-विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर। अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बद्ध। अपभ्रंश साहित्य अकादमी के परामर्शदाता। इस अंक में प्रकाशित लेख—1. पउमचरिउ का एक प्रसंग—व्याकरणिक विश्लेषण, 2. अपभ्रंश रचना सौरभ। सम्पर्क सूत्र—एच. 7, चितरंजन मार्ग, सीस्कीम, जयपुर-302 001।
2. **डॉ. कैलाशनाथ टण्डन**—एम.ए., पीएच.डी., डी. लिट्.। अपभ्रंश भाषा और उसके कवियों पर शोध-कार्य। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। प्राचार्य, कालीचरण डिग्री कॉलेज, लखनऊ। इस अंक में प्रकाशित लेख—महाकवि स्वयंभूदेव की भाषा में प्रयुक्त स्वर-ध्वनियों का विवेचन। सम्पर्क सूत्र—कालीचरण डिग्री कॉलेज, हरदो रोड, लखनऊ-3, उत्तर प्रदेश।
3. **डॉ. कैलाशचन्द भाटिया**—एम.ए., पीएच.डी., डी. लिट्.। भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा के विविध पक्षों पर अनुसंधान। अनेक पुस्तकें, लेख पुरस्कार प्राप्त। निदेशक, वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन। इस अंक में प्रकाशित लेख—स्वयंभू की भाषा-शब्द सम्पदा। सम्पर्क सूत्र—वृन्दावन शोध संस्थान, रमणरेती, वृन्दावन-281124।
4. **डॉ. छोटेलाल शर्मा**—एम.ए., पीएच.डी., डी. लिट्.। सौन्दर्यशास्त्र, भाषाशास्त्र एवं अपभ्रंश भाषा के विशेषज्ञ। भूतपूर्व प्रोफेसर, हिन्दी एवं भाषाविज्ञान, वनस्थली विद्या-पीठ। निदेशक, अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर। इस अंक में प्रकाशित लेख—स्वयंभू और पक्षविचार। सम्पर्क सूत्र—अपभ्रंश साहित्य अकादमी, भट्टारकजी की नशिया, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-302 004।

5. डॉ. (श्रीमती) जे. एस. कुसुमगीता—एम.ए., पीएच.डी.। हिन्दी एवं कन्नड भाषा पर तुलनात्मक अध्ययन। बंगाली, मराठी, जर्मन आदि भाषाविद्। अनेक पुस्तकें, शोध-पत्र एवं अनुदित साहित्य प्रकाशित। रीडर, भाषाशास्त्र एवं हिन्दी, मानस गंगोत्री, मैसूर। इस अंक में प्रकाशित लेख—पउमचरिउ में बिब। सम्पर्क सूत्र—8, पंचवटी, सरस्वतीपुरम्, मैसूर-570 009।
6. डॉ. त्रिलोकीनाथ प्रेमी—एम.ए., डी. फिल.। अनेक शैक्षणिक संस्थाओं से सम्बद्ध। अनेक शोधपरक पुस्तकें एवं निबन्ध प्रकाशित। रीडर, हिन्दी विभाग, आगरा, कॉलेज, आगरा। इस अंक में प्रकाशित लेख—अपभ्रंश के आदिकवि स्वयंभू। सम्पर्क सूत्र—‘रामत्रिवेणी कुटीर,’ 49, बी. आलोकनगर, आगरा-282 010।
7. प्रीति जैन—एम.ए.। अपभ्रंश साहित्य अकादमी द्वारा संचालित अपभ्रंश सर्टिफिकेट एवं डिप्लोमा प्राप्त। अपभ्रंश साहित्य अकादमी में कार्यरत। इस अंक में प्रकाशित लेख—पउमचरिउ पर आधारित संभि-विधान। सम्पर्क सूत्र—1130, महावीर पार्क रोड, जयपुर-302 003।
8. डॉ. रामबरन पाठक—एम. ए., पीएच. डी., साहित्यरत्न। अपभ्रंश भाषा में विशेष योग्यता। प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष-हिन्दी विभाग, बद्री-विशाल कॉलेज, फर्रुखाबाद। इस अंक में प्रकाशित लेख—कारक विधान। सम्पर्क सूत्र—प्राचार्य, बद्री विशाल कॉलेज, फर्रुखाबाद, उ.प्र.।
9. डॉ. सुषमा शर्मा—बी.एससी., पीएच. डी.। हिन्दी के भाषिक व साहित्यिक रूप पर विशेष कार्य। व्याख्याता, हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ। इस अंक में प्रकाशित लेख—पउमचरिउ के काव्यचित्र। सम्पर्क सूत्र—6, गार्गी निवास, वनस्थली, राज.।



## जैनविद्या संस्थान के महत्वपूर्ण प्रकाशन

1-5.	राजस्थान के जैन-शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची—प्रथम एवं द्वितीय भाग- तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम भाग सम्पादक---डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल, पं. अनूपचन्द न्यायतीर्थ	अप्राप्य 350.00
6.	जैन ग्रंथ भण्डारस इन राजस्थान (शोध प्रबन्ध) —डॉ. क. च. कासलीवाल	50.00
7.	प्रशस्ति-संग्रह—सम्पादक डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल	अप्राप्य
8.	राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ. क. च. कासलीवाल	20.00
9.	महाकवि दौलतराम कासलीवाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल	20.00
10.	जैन शोध और समीक्षा—डॉ. प्रेमसागर जैन	20.00
11.	जिणदत्तचरित—संपा.—डॉ. माताप्रसाद गुप्त, डॉ. क. च. कासलीवाल	12.00
12.	प्रद्युम्नचरित—सं.—पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ, डॉ. क. च. कासलीवाल	12.00
13.	हिन्दी पद संग्रह—सम्पा.—डॉ. क. च. कासलीवाल	अप्राप्य
14.	सर्वार्थसिद्धिसार—संपा.—पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ	10.00
15.	चम्पाशतक—संपा.—डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल	6.00
16.	तामिल भाषा का जैन साहित्य—संपा.-पं. भंवरलाल पोल्याका	अप्राप्य
17.	वचनदूतम् — (पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध) —पं. मूलचन्द शास्त्री	प्रत्येक 10.00
18.	तीर्थकर वर्द्धमान महावीर—पं. पद्मचन्द शास्त्री	10.00
19.	पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ स्मृतिग्रंथ	50.00
20.	बाहुबली (खण्डकाव्य)—पं. अनूपचन्द न्यायतीर्थ	10.00
21.	योगानुशीलन—श्री कैलाशचन्द बाढदार	75.00
22.	ए की टू टू हैप्पीनेस—ब्र. शीतलप्रसाद जी	अप्राप्य
23.	चूनड़िया (अपभ्रंश)—मुनिश्री विनयचन्द, अनु. पं. भंवरलाल पोल्याका	1.00
24.	आरांदा (अपभ्रंश) —श्री महानंदिदेव, अनु. डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री	5.00
25.	णेमीसुर की जयमाल एवं पाण्डे की जयमाल (अपभ्रंश)—मुनि कनकीर्ति एवम् कवि नण्डु, अनु.—पं. भंवरलाल पोल्याका	2.00
26.	समाधि (अपभ्रंश) — मुनि चरित्रसेन, अनु.—पं. भंवरलाल पोल्याका	4.00
27.	बुद्धिसायण अणमचरितु (अपभ्रंश)—कवि नेमिप्रसाद, अनु.—भंवरलाल पोल्याका	5.00
28.	कातन्त्ररूपमाला—भावसेन त्रैविद्यदेव	12,00
29.	बोधकथा मञ्जरी—श्री नेमीचन्द पटोरिया	12.00
30.	मृत्यु जीवन का अन्त नहीं—डॉ. श्यामराव व्यास	5.00
31.	पुराणसूक्तिकोश	15.00
32.	वर्धमानचम्पू—पं. मूलचन्द शास्त्री	25.00
33.	चेतना का रूपान्तरण—ब्र. कु. कौशल	15.00
34.	आचार्य कुन्दकुन्द—पं. भंवरलाल पोल्याका	2.00
35.	अतीत के पृष्ठों से—डॉ. राजाराम जैन	3.00
36.	आचार्य कुन्दकुन्द : द्रव्यविचार—डॉ. कमलचन्द सोगाणी	15.00